ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अगस्त २०१४ Date of Printing = 5-8-2014
प्रकाशन दिनांक= 5-8-2014

वर्ष ४३ : अङ्क १०
दयानन्दाब्द : १९१
विक्रम-संवत् : श्रावण-भाद्रपद २०७१
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११५

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
सम्पादक (आदरी) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक व प्रबन्ध सम्पादक: धर्मपाल आर्य
सम्पादक : डॉ. अशोक कुमार
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, नया बांस, मन्दिर वाली गली,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०६२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com
एक प्रति ५.०० रु० वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

- युग नायक..... २
- वेदोपदेश २
- इतिहास को ४
- श्वेताश्वत..... ९
- स्वतन्त्रता पर्व.... १२
- अबला नहीं..... १४
- उर्मिला से भी... १५
- पाकिस्तान की स्थापना.... १७
- नरेन्द्र मोदी.... १८
- अकबर.... १९
- माता पिता की.... २२

सत्यार्थप्रकाश
प्रचार संस्करण ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

युग नायक - महर्षि दयानन्द सरस्वती

(पं. नन्दलाल निर्भय भजनोपदेशक, पत्रकार, चलभाष-9813845774)

सकल विश्व के सब नर-नारी, वैदिक धर्म निभाओ तुम।
युग नायक ऋषि दयानन्द की, मिलकर महिमा गाओ तुम।।

वैदिक पथ को भूल गई थी, बिल्कुल यह दुनिया सारी।
अविद्या रूपी अंधकार में? भटक रहे थे नर-नारी।।
पाखंडी हुंकार हरे थे, गुरुडम पनपा था भारी।
जन्म जाति की ऊंच-नीच की, फैल गई थी बीमारी।।

पढ़ो सभी इतिहास पुराना, व्यर्थ न समय गंवाओ तुम।
युग नायक ऋषि दयानंद की, मिलकर महिमा गाओ तुम।।

वेद विरोधी अंग्रेजों का, भारत में था राज सुनो।
धूर्त नास्तिक, गौ हत्यारों के सिर पर था ताज सुनो।।
डाकू गुण्डे मालिक थे, चिंतित था सकल समाज सुनो।
ईश भक्त विद्वानों की थी, दबी हुई आवाज सुनो।।

लाखों विधवाएं रोती थीं, समझों अरु समझाओ तुम।
युग नायक ऋषि दयानंद की, मिलकर महिमा गाओ तुम।।

स्वामी विरजानंद दण्डी का, चेला मथुरा से आया।
स्वामी दयानंद योगी ने, सकल विश्व को समझाया।।
किया वेद प्रचार जगत में, कभी नहीं वह दहलाया।
कर्म प्रधान बताया जग में, मोक्ष मार्ग को दर्शाया।।

ऋषिवर का ऋण है हम सब पर, आओ, उसे चुकाओ तुम।
युग नायक ऋषि दयानंद की, मिलकर महिमा गाओ तुम।।

शिवरात्रि को बोध हुआ था, ऋषि ने घर को छोड़ा था।
जगत पिता उस जगदीश्वर से, सच्चा नाता जोड़ा था।।
ऐसा त्यागी सन्त जगत में, अब तक कोई न आया।
परोपकारी दयानंद ने, सत्तरह बार जहर खाया।।

ऋषिवर से सब बनो तपस्वी, जीवन सफल बनाओ तुम।
युग नायक ऋषि दयानंद की, मिलकर महिमा गाओ तुम।।

उग्रवाद, आतंकवाद का, दुनिया में है जोर सुनो।
मांसाहारी चोर, शराबी, मचा रहे हैं शोर सुनो।।
सत्य, अहिंसा, सदाचार को, छोड़ चुके हैं नर-नारी।
लाखों गउएं आर्यावर्त्त में प्रति दिन जाती हैं मारी।।

"नन्दलाल निर्भय" जागो! दुष्टों के शीस उड़ाओ तुम।
युग नायक ऋषि दयानंद की, मिलकर महिमा गाओ तुम।।

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। **अग्निः=भौतिकोऽग्निः।** बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः।

निःशंकतया सर्वैः स यज्ञोऽनुष्ठातव्य इत्युपदिश्यते।।

निःशंक होकर उक्त यज्ञ सबको करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है।

ओ३म् मा भेमा संविक्था ऽ अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा।।यजु०१/२३।।

पदार्थः **(मा)** निषेधार्थे **(भेः)** विभीहि। **अत्र लोडर्थे लङ्। बहुलं छन्दसीति शपो लुक् (मा)** निषेधार्थे **(सम्)** एकीभावे **(विक्थाः)** चल। **ओविजी भयचलनयोरित्यस्मल्लोडर्थे। लङि मध्यमैकवचने बहुलं दनदसीति विकरणभावश्च (अतमेरु)** न तम्यति येन यज्ञेन सः। **तमुधातोर्बाहुलकादेरुः प्रत्ययः (यज्ञः)** इज्यते यस्मिन् सः **(अतमेरुः)** न ताभ्यति यः स यज्ञकर्त मनुष्यः **(यजमानस्य)** यज्ञस्यानुष्ठातुः **(प्रजा)** सुसन्ताना यज्ञसंपादिका **(भूयात्)** भवेत् **(त्रिताय)** त्रयाणामग्निकर्महविषां भावाय **(त्वा)** तम् **(द्विताय)** द्वयोर्वायुर्वावृष्टिजलशुद्धयोर्भावाय **(त्वा)** तम् **(एकताय)** एकस्य सुखस्य भावाय **(त्वा)** त्वाम्।। **अयं मंत्रः शं. 1/1/2/15-18 तथा 1/2/3/1-9 व्याख्यातः ।।23।।**

सपदार्थान्वयः **हे विद्वन्। त्वमतमेरुः** न ताम्यति यः स यज्ञकर्ता मनुष्यः **सन् यजमानस्य** यज्ञस्यनुष्ठातुः यज्ञस्याऽनुष्ठानान्मा भेः=भयं मा कुरु न बिभीहि, **एतस्मान्मा संविक्थाः=मा विचल।**

एवं (यज्ञः)= यज्ञम् इज्यते यस्मिन् सः, **कृतवतस्तेऽतमेरुः** न ताम्यति येन यज्ञेन स **प्रजा** सुसन्ताना यज्ञसम्पादिका **भूयाद्** भवेत्।

अहं त्वा=तमग्निं यज्ञाय त्रिताय त्रयाणामग्निकर्म्महविषां भावाय **द्विताय** द्वयोर्वायुवृष्टि-जलशुद्धयोर्भावाय **एकताय** एकस्य सुखासय भावाय **च सुखाय संयौमि**।।1/23।।

भाषार्थ : हे विद्वान् पुरुष! तू **(अतमेरु)** आलस्य-रहित यज्ञ करने वाला बनकर **(यज्ञमानस्य)** यज्ञ करने वाले यजमान के यज्ञानुष्ठान से **(मा भेः)** मत डर और इस यज्ञानुष्ठान से **(मा संविक्थाः)** विचलित मत हो।

इस प्रकार **(यज्ञम्)** यज्ञ करने वाले आपकी **(अतमेरुः)** सदा यज्ञ करने वाली **(प्रजा)** उत्तम सन्तान वाली प्रजा **(भूयात्)** हो।

मैं **(त्वा)** उस अग्नि को यज्ञ के लिये अर्थात् **(त्रिताय)** अग्नि, कर्म और हवि इन तीनों के लिये **(द्विताय)** वायु और वर्षा जल की शुद्धि इन दोनों के लिये **(एक)** और एक सुख के लिये **(संयौमि)** स्थापित करता हूँ।। 1/23।।

भावार्थः ईश्वरः प्रतिमनुष्यमाज्ञापयत्या-शीश्च ददाति7नैव केनापि मनुष्येण यज्ञसत्याचार- विद्याग्रहणस्य सकाशाद् भेतवव्यं, विचलितव्यं वा।

कस्मात्? युष्माभिरेतैरेव सुप्रजाशारीरिक वाचिक मानसानि निश्चलानि सुखानि प्राप्तं शक्यामि भवन्त्यस्मादिति।।1/23।।

भावार्थ ईश्वर प्रत्येक मनुष्य को आज्ञा और आशीर्वाद देता है कि किसी मनुष्य को यज्ञ, सत्याचार और विद्याग्रहण से डरना वा विचलित नहीं होना चाहिये।

क्योंकि-तुम इन्हीं शुभ कर्मों से उत्तम सन्तान, शारीरिक, वाचिक और मानसिक स्थिर सुखों को प्राप्त कर सकते हो।।1/23।।

इतिहास को बिगाड़ती कहानियां (5)

(राजेशार्य आट्टा)

प्रिय पाठकवृन्द! 'पृथ्वीराज रासो' में राजपूतों की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से मानी है, जिसे इतिहासकार एकदम मिथ्या कल्पना मानते हैं। सम्भवतः इस धारणा के मूल में रामायण-महाभारत जैसे ग्रन्थ रहे हों, जिनकी नायिकाओं (सीता व द्रौपदी) का जन्म अप्राकृतिक ढंग से (भूमि व यज्ञकुण्ड से) हुआ लिखा है। आर्यों के प्राचीन इतिहास को काल्पनिक बनाने में ऐसी कहानियाँ लिखने व मानने वालों की भी भूमिका रही है। वैदिक सिद्धान्तानुसार (आदि सृष्टि-अमैथुनी- को छोड़कर) चेतन सृष्टि की उत्पत्ति के चार प्रकार हैं - अण्डज (पक्षी), जरायुज (मानव व जानवर), स्वेदज (कीट, पतंग) और उद्भिदज (लता, वृक्षादि)। ये ही प्रकार आज भी देखे जा सकते हैं। अग्नि या भूमि से मनुष्य न पहले पैदा होते थे न आज पैदा होते हैं। बहुत कुछ सम्भावना है कि सीता व द्रौपदी के जन्म की कथाओं को पुराण काल के लेखकों ने बिगाड़ा है, क्योंकि पुराणों में तो उपर्युक्त चारों प्रकार की सृष्टि (जो असम्भव है) एक ही स्थान से भी करवा रखी है अर्थात् मानव से पशु-पक्षी, वृक्ष आदि सब पैदा हो गये।

इसीलिए राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार श्री जगदीश सिंह गहलोत को लिखना पड़ा- "पुराण एक गपोड़ गाथाओं का भण्डार है जो सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ व संस्कृत के विद्वान् पं. चिन्तामणि विनायक वैद्य के मतानुसार ई. सन् 300 से 900 के बीच बने हैं। पुराणों को शुद्ध इतिहास का महत्व नहीं दिया जा सकता।"

पर रामायण-महाभारत तो इतिहास हैं। अतः सीता-द्रौपदी की घटनाओं को इतिहास के सन्दर्भ में देखते हैं- 'सीता' शब्द का अर्थ भूमि पर हल चलाने से बनने वाली रेखा (खूड) होता है। सम्भवतः इसी शब्द को लेकर किसी विद्वान् ने अपनी बुद्धि का चमत्कार दिखाने के लिए प्रकृति के नियमों के साथ इतिहास की भी हत्या कर दी। कोई सन्देह न कर ले इसीलिए वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 66वें सर्ग में राजा जनक के मुख से सीता के लिए बार-बार 'अयोनिजा' व 'भूमि से उत्पन्न हुई' कहलवाया है। जबकि इसी और अगले (67, 68वें) सर्गों में राजा जनक ने सीता को 'सुता', 'आत्मजा' आदि कहा है, जिनका अर्थ 'अपने शरीर से उत्पन्न हुई' ही होता है, जो अस्वाभाविक भी नहीं है। सीता ने राजा जनक की महारानी के लिये 'जननी' शब्द प्रयोग किया है जिसका अर्थ पैदा करने वाली होता है और उर्मिला के लिये अनुजा (बाद में पैदा होने वाली) कहा है। राम-सीता के विवाह के अवसर पर (71वें सर्ग में) राम के (सूर्यवंशी) पूर्वजों की तथा 72वें सर्ग में राजा जनक द्वारा सीता के (अपने) 22 पूर्वजों की वंशावली सुनाना सीता को राजा जनक की औरस पुत्री सिद्ध करता है।

आचार्य प्रेमभिक्षु जी ने अद्भुत रामायण के आधार पर सीता की माता का नाम 'धरणि' लिखा है। धरणि का अर्थ पृथ्वी (धरती) भी होता है। सम्भव है इन्हीं शब्दों के कारण भ्रान्ति उत्पन्न की गई हो। देखिये-

धरणि तनयया यद्भुतं कृत्यं धरण्यां कृतमिह-
मनसा तच्चिन्तयन्ते द्विजेन्द्रः। सर्ग 23, श्लोक 72

स्वामी जगदीश्वरानन्द जी द्वारा सम्पादित रामायण में 66वें सर्ग के 15वें श्लोक के स्थान पर यह श्लोक मिलता है-

वीर्यशुल्केति मे कन्या नाम्ना सीतेति विश्रुता।
योगिन्यास्तनयां तां तु वर्धमानां ममात्मजाम्।।
(स. 25, श्लोक०7)

'अर्थात् योगिनी के गर्भ से उत्पन्न सीता नाम से प्रसिद्ध मेरी वीर्यशुल्का कन्या को....।'

यहाँ सीता की माता का नाम योगिनी लिखा है। नाम कुछ और भी हो सकता है। कई बार नाम छिप जाता है, पर व्यक्ति अवश्य होता है। मुझसे एक बार किसी सज्जन ने स्वामी श्रद्धानन्द की माता का नाम पूछा। मैंने कई पुस्तकें देखीं, पर नाम नहीं मिला फिर भी माँ अवश्य थी।

द्रौपदी के विषय में भी ऐसा ही है। उसका नाम याज्ञसेनी था। शायद उसी के आधार पर औपन्यासिक मस्तिष्क वाले लोगों ने कल्पना की उड़ान भरी और अपना कौशल दिखा दिया कि राजा द्रुपद ने द्रोणाचार्य से अपने अपमान का बदला लेने के लिये तपस्वी याज से प्रार्थना की कि मैं द्रोण से श्रेष्ठ और उनको युद्ध में मारने वाला पुत्र चाहता हूँ। आप वैसा यज्ञ मुझसे कराइये।' यज्ञ किया गया और उस (यज्ञाग्नि) में से मुकुट, कवच, अस्त्र-शस्त्र धारण किया हुआ वीर (धृष्टद्युम्न) प्रकट हुआ। वह रथ पर सवार होकर इधर-उधर दौड़ने लगा। इसके बाद पुत्री कृष्णा (द्रौपदी) प्रकट हुई। "यज्ञ से उत्पन्न होने के कारण वह याज्ञसेनी कहलाई ऐसा भी कुछ लोग मानते हैं पर यज्ञसेन तो राजा द्रुपद का विशेषण था।

यह सत्य है कि धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य का वध किया था, पर वह तो अन्तिम समय (महाभारत युद्ध) में किया था। उस युद्ध में तो बिना वैर भाव के भी लोगों ने एक दूसरे को मारा था। इसे अपमान का बदला नहीं कहा जा सकता। फिर भी मान लेते हैं, पर द्रौपदी की तो द्रोण को मारने में कोई भूमिका नहीं थी, फिर वह क्यों प्रकट (उत्पन्न) हुई?

उसके जन्म का उद्देश्य बताते हुए लिखा है- "आकाशवाणी द्वारा कहा गया कि देवताओं का प्रयोजन सिद्ध करने के लिये क्षत्रियों के संहार के उद्देश्य से इसका जन्म हुआ है। इसके कारण कौरवों को बड़ा भय होगा।" देवताओं का क्षत्रियों से क्या वैर था, जो वे उनका संहार करना चाहते थे? क्या देवताओं में इतना भी सामर्थ्य नहीं था कि वे सीधे क्षत्रियों से टकराते? कौरवों ने द्रुपद का क्या बिगाड़ा था, उसे हराया तो पाण्डवों ने था, फिर कौरवों को भयभीत करने के लिए द्रौपदी क्यों प्रकट हुई? वैसे भी राजा द्रुपद ने तो केवल द्रोणाचार्य को मारने वाले पुत्र की ही कामना की थी, पुत्री की नहीं।

कल्पना की एक उड़ान और देखिये- 'इनके उत्पन्न होने पर राजा द्रुपद की रानी ने यज्ञ के ब्रह्मा याज से प्रार्थना की कि ये दोनों मेरे अतिरिक्त और किसी को अपनी माँ न जानें। सोचिये, जब वे किसी के शरीर से उत्पन्न ही नहीं हुए, तो किसी को अपनी माँ कैसे मान सकते हैं? और राजा द्रुपद ने तो ऐसी प्रार्थना नहीं की कि मेरे अतिरिक्त किसी और को पिता न मानें। फिर भी द्रौपदी (द्रुपद+अण्डीन्), याज्ञसेनी (यज्ञसेन-द्रुपद+अण्डीप) आदि नाम कृष्णा को राजा द्रुपद की सन्तान सिद्ध कर रहे हैं। पांचाल राज यज्ञसेन (राजा द्रुपद) की पुत्री होने से द्रौपदी का नाम याज्ञसेनी था, यज्ञ से उत्पन्न होने के कारण नहीं।

कथा के अंतिम बिन्दु को देखकर प्रबुद्ध पाठक जान लेंगे कि इस कहानी में कितना दम है। लिखा है- "यज्ञ की समाप्ति पर द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्न को अपने घर ले आये और उसे अस्त्र-शस्त्र की विशिष्ट शिक्षा दी। परम बुद्धिमान द्रोणाचार्य यह जानते थे कि प्रारब्धानुसार जो कुछ होना है, वह तो होकर ही रहेगा।" जिसके मारने के लिए यज्ञ का अनुष्ठान किया गया हो, क्या ऐसे शत्रु (द्रोणाचार्य) को यज्ञ में आमंत्रित किया गया होगा? क्या यज्ञ संकल्प (द्रोण को मारने वाला पुत्र चाहिये) सुनाते समय द्रोणाचार्य उपस्थित थे? फिर यज्ञ-प्रसंग में उनका नाम क्यों नहीं लिखा? क्या इतना विरोध होने पर भी राजा द्रुपद अपने प्रिय पुत्र को शिक्षा-प्राप्ति के लिए आचार्य द्रोण के पास भेज सकते थे? यदि द्रोणाचार्य ने प्रारब्ध को स्वीकार कर धृष्टद्युम्न (अपने भावी हत्यारे) को शिक्षा दी, तो द्रुपद से प्राप्त होने वाले अपमान को भी प्रारब्ध (भाग्य) के अनुसार क्यों नहीं माना? ऐसी कहानियाँ मन तो बहला सकती हैं, पर इतिहास नहीं हो सकती।

समाज में किसी परिस्थिति वश कोई व्यक्ति जब धर्म या समाज विरुद्ध कोई आचरण करता है, यदि उसी समय उसका विरोध नहीं किया जाता है, तो भविष्य में उसका स्वरूप बड़ा भयंकर हो सकता है। बाद में कुछ प्रबुद्ध जन यदि उस कुप्रथा का विरोध करते हैं, तो चालाक व स्वार्थी लोग अज्ञान का जाल फैलाकर सामान्य जन को रूढ़िवादिता के घेरे से बाहर नहीं आने देते। धर्मग्रन्थों के लेख दिखाकर मनमानी करते रहते हैं। सती प्रथा ऐसी ही कुप्रथा थी, जिसको वेदों से प्रमाणित करने की धृष्टता की गई। सीधी सी बात है कि यदि यह प्रथा वैदिक काल में होती, तो रामायण काल में कोई विधवा सती क्यों नहीं हुई? महाभारत काल में सत्यवती, अम्बिका, अम्बालिका, उत्तरा व हजारों यादवों की पत्नियाँ सती क्यों नहीं हुई?

बहुत कुछ सम्भावना है कि भारत में सती प्रथा का आरम्भ भावनात्मक (पति के साथ संसार से विदा होना) व स्वैच्छिक रहा होगा, पर बाद में यह कुप्रथा बन गई और न चाहते हुए भी विधवा स्त्रियाँ परम्परा को निभाने के लिए सती होने लगीं या सती की जाने लगीं। स्वार्थी पण्डितों द्वारा सती को महिमा मण्डित करने से भी यह कुप्रथा बढ़ी। जैसे-अग्नि पुराण (नौवीं शताब्दी) में लिखा है कि जो स्त्री पति के शब के साथ अग्नि में प्रविष्ट होती है, वह स्वर्ग जाती है।' इसका भयंकर रूप इस्लाम के आगमन पर ही प्रकट हुआ। जौहर (महिलाओं द्वारा सामूहिक रूप से अग्नि में कूदना) का स्वरूप अलग था, पर राजाओं की मृत्यु पर उनके साथ सती होने वाली रानियों के साथ दासियों तक को भी जलना पड़ता था। (महाराणा अमरसिंह प्रथम के साथ 10 रानियाँ, 9 खबासनें और 9 सहेलियाँ सती हुई थीं। जोधपुर के महराजा अजीत सिंह के साथ 58 रानियाँ और खवासनें सती हुई थीं।) धीरे-धीरे यह कुप्रथा समाज के अन्य वर्गों में भी फैल गई।

पाठक! सोचिये, वह कैसा हृदय विदारक दृश्य होता होगा, जब ढोल बजाकर किसी दुःखिया (जिसका सुहाग लुट चुका है) को जबरदस्ती जिन्दा जलाया जाए। फ्रांसीसी यात्री बर्नियर (1656 ई०-1668 ई०) ने भारत में जब पहली बार किसी महिला को सती होते हुए देखा था, तो घबराहट के कारण उसका सिर घूम गया था। वह लिखता है- "लाहौर में मैंने एक बहुत ही सुन्दर अल्पवयस्क विधवा, जिसकी आयु मेरे विचार में बारह वर्ष से अधिक नहीं थी, की बलि होते हुए देखी। उस भयानक नरक की ओर जाते हुए वह असहाय छोटी बच्ची जीवित से अधिक मृत प्रतीत हो रही थी, उसके मस्तिष्क की व्यथा का वर्णन नहीं किया जा सकता; वह काँपते हुए बुरी तरह से रो रही थी; लेकिन तीन या चार ब्राह्मण, एक बूढ़ी औरत, जिसने उसे अपनी आस्तीन के नीचे दबाया हुआ था, की सहायता से उस अनिच्छुक पीड़िता को जबरन घातक स्थान की ओर ले गए, उसे लकड़ियों पर बैठाया, उसके हाथ और पैर बाँध दिए ताकि वह भाग न जाए और इस स्थिति में उस मासूम प्राणी को जिन्दा जला दिया गया। मैं अपनी भावनाओं को दबाने में और उनके कालोहलपूर्ण तथा व्यर्थ के क्रोध को बाहर आने से रोकने में असमर्थ था।

राजा राममोहन राय के बड़े भाई हरिमोहनराय की मृत्यु (1811 ई०) होने पर उनकी पत्नी ने (तथाकथित सती प्रथा के प्रभाव से) सती होने की घोषणा कर दी, पर राजा राम मोहन राय के समझाने पर उसने अपनी घोषणा वापस ले ली। इस पर दुष्ट स्वार्थी लोगों ने राम मोहन राय को पकड़कर एक पेड़ से बाँध दिया और हरिमोहन राय की पत्नी को घर से बलात् लाकर जलती चिता में फेंक दिया। वह जीवित रहते-रहते चिता से निकलने का प्रयास करती रही, किन्तु नर-पिशाचों की मंडली उसको बार-बार बांसों से चिता में धकेलती रहीं अन्त में वह साध्वी जीवित ही पति के साथ चिता में जल गई। पेड़ से बंधे राजा जी इस भयावह व कारूणिक दृश्य को विवश होकर देखते रहे। लगभग 18 वर्ष बाद 1829 ई० में वे इसे (सती प्रथा) रोकने के लिए कानून बनवाने में सफल हुए।

आश्चर्य है, ऐसी भयंकर कुप्रथा का समर्थन भी लोगों ने महाभारत से करवा लिया। अपने कुकर्म को मान्यता देने के लिए महाभारत में माद्री का पाण्डु के साथ सती होने का प्रसंग मिला दिया। वैदिक विद्वानों (श्री आचार्य प्रेमभिक्षु, श्री यशपाल शास्त्री आदि) ने ऋषि दयानन्द से प्राप्त दिव्य चक्षु द्वारा उस धूर्तता को पहचान कर उसका निराकरण किया है। उन्हीं के आधार पर कुछ विचार बिन्दु पाठकों की सेवा में प्रस्तुत हैं-

1. महाभारत, आदिपर्व के 124वें अध्याय में माद्री के कारण पाण्डु की मृत्यु होना व ऋषियों द्वारा वन में ही उनका दाह संस्कार किया जाना लिखा है। उसी समय कुन्ती से अनुनय-विनय करके माद्री राजा की चिता पर जा बैठी। (श्लोक संख्या 31)

यहाँ सबसे पहले विचारणीय बात यह है कि पाण्डु हस्तिनापुर नरेश था, क्या उनके साथ वन में कोई अंगरक्षक, सेवक या सैनिक आदि नहीं गये होंगे? क्या उनके माध्यम से यह सूचना हस्तिनापुर नहीं भेजनी चाहिए थी, जो ऋषियों ने वन में अपने आप ही दाह संस्कार कर दिया? और वह भी इतना जल्दी कि संस्कार से पूर्व स्नान आदि करवाने की भी आवश्यकता नहीं समझी? 18वें से 30वें श्लोक (इनके बीच में लगभग 50 श्लोक बिना संख्या के भी हैं) तक कुंती से वार्तालाप (विलाप) करते ही तत्काल 31वें श्लोक में माद्री चिता पर जा बैठी। गीता प्रेस से प्रकाशित महाभारत के इस अध्याय का यह अंतिम श्लोक है। वैसे दाक्षिणात्य अधिक पाठ के चार श्लोक और हैं, पर उनकी संख्या नहीं लिखी। इससे यह सन्देह उत्पन्न होता है कि अत्यधिक वियोग-दुःख में या आत्मग्लानि से पीड़ित होकर माद्री द्वारा प्राण त्याग करने वाले श्लोक हटा दिये गये हैं और सती प्रथा (जीवित जल मरना) के समर्थक श्लोक जोड़े गये हैं। क्योंकि बिल्कुल पहले (29वें) श्लोक में माद्री कुन्ती से कहती है-

राज्ञः शरीरेण सह ममापीदं क्लेवरम्।
दग्धव्यं सुप्रतिच्छन्नमेतदार्ये प्रियं कुरु।। आदि. 124-29

"मेरे इस शरीर को महाराज के शरीर के साथ ही अच्छी प्रकार ढककर दग्ध कर देना चाहिए। बड़ी बहन! आप मेरा यह प्रिय कार्य कर दें।"

प्रबुद्ध पाठक! जरा सोचिये, स्वयं जाकर चिता पर बैठने वाला व्यक्ति किसी दूसरे को अपना शरीर अच्छी प्रकार ढककर जलाने के लिए नहीं कहेगा और यदि कहता है तो निश्चित रूप से चिता पर जाने से पहले वह मर चुका होगा। और मरे हुए शरीर (शव) को जलाना सती प्रथा (तथाकथित) नहीं कहलाता।

ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि 30वें श्लोक तक माद्री ने कुन्ती से निवेदन किया और 31वें श्लोक में बिना किसी तैयारी (चिता, अरथी आदि का वर्णन) किये माद्री सती हो गई।

देखिये-

इत्युक्त्वा तं चिताग्निस्थं धर्मपत्नी नरर्षभम्।
मद्रराजसुता तूर्णमन्वारोहद् यशस्विनी।। 31।।

"कुन्ती से यह कहकर पाण्डु की यशस्विनी धर्मपत्नी माद्री चिता की आग पर रक्खे हुए नरश्रेष्ठ पाण्डु के शव के साथ स्वयं भी चिता पर जा बैठी।

यदि यह सत्य है, तो अगले बिना संख्या वाले (दाक्षिणात्य अधिक पाठ) श्लोकों में यह क्यों लिखा कि प्रेतकर्म की सामग्री (घी, चावल, घड़े आदि) एकत्र करके मुनियों ने अश्वमेध की अग्नि मंगवाकर चिता जलायी? जबकि आग तो पहले जल चुकी थी।

2. यदि यह श्लोक सत्य है तो अगले श्लोकों में (अध्यायों में) पाण्डु और माद्री के शरीर (शवों) का वर्णन क्यों है? क्योंकि जलने के बाद तो अस्थियाँ ही शेष रहती हैं और किसी का नाम शव तक ही रहता है अस्थियों का नहीं। देखिये-

तस्येमानात्मजान् देहं भार्यां च सुमहात्मनः।
स्वराष्ट्रं गृह्य गच्छामो धर्म एष हि नः स्मृतः।।
125.4

"उस वन में रहने वाले ऋषियों ने कहा कि उन (पाण्डु) के इन पुत्रों, पांडु एवं माद्री के शवों तथा उन

महामना की रानी कुंती की लेकर हम लोग उनकी राजधानी में चलें। इस समय हमारे लिए यही धर्म प्रतीत होता है।"

तस्मिन्नेव क्षणे सर्वे तानादाय प्रतस्थिरे।
पाण्डोर्दारांश्च पुत्रांश्च शरीरे ते च तापसाः।। 125-7

"उसी समय सभी तपस्वी पाण्डु की पत्नी कुन्ती और पुत्रों को तथा दोनों शवों को लेकर (हस्तिनापुर) के लिए चल पड़े।"

यहाँ पाण्डु और माद्री के शवों के लिए 'देह' और 'शरीर' शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिनका अर्थ शरीर (जीवित या मृत) ही होता है, पर गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित महाभारत में इनका अर्थ अस्थियाँ लिखा है, जो किसी शब्द-कोष में नहीं है। यद्यपि इस अध्याय (125वें) में भी ऋषियों के मुख से कहलवाया है कि माद्री पाण्डु की चिता में प्रवेश कर (सती हो) गई थी (श्लोक संख्या 30 व 31), पर अगले ही श्लोक में यह भी लिखा है-

इमे तपोः शरीरे द्वे पुत्राश्चेमे तयोर्वराः।

हस्तिनापुर पहुँचकर ऋषियों ने भीष्म को पाण्डु की मृत्यु का समाचार सुनाकर कहा- "ये उन दोनों के शरीर हैं और उनके श्रेष्ठ पुत्र हैं।" क्या यह वन में पाण्डु व माद्री के दाह संस्कार को मिथ्या सिद्ध नहीं कर रहा है? पर गीताप्रेस वाले हठवश शरीर का अर्थ शरीर की अस्थियाँ ही करते हैं। यदि यह मान लिया जाए कि सतरह दिन तक पाण्डु का मृत शरीर सड़ने के डर से ऋषियों ने वन में ही जला दिया होगा, तो प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या अस्थियों का भी दाह संस्कार किया जाता है अर्थात् यदि वन में पाण्डु का दाह संस्कार हो चुका था, तो फिर 126वें अध्याय में धृतराष्ट्र ने विदुर से क्यों कहा-

पाण्डोर्विदुर सर्वाणि प्रेतकार्याणिकारय।
राजवद् राजसिंहस्य माद्र्याश्चैव विशेषतः।। 126-1

"विदुर! राजाओं में श्रेष्ठ पाण्डु के तथा विशेषतः माद्री के समस्त प्रेतकार्य (दाह संस्कार आदि) राजोचित ढंग से कराओ।"

तथा च कुन्ती सत्कारं कुर्यान्माद्र्यास्तथा कुरु।
यथा न वायुर्नादित्यः पश्येतां तां सुसंवृताम्।।3।।

"कुन्ती देवी माद्री का जिस प्रकार सत्कार करना चाहें, वैसी व्यवस्था करो। माद्री को (अस्थियों को नहीं) वस्त्रों से अच्छी प्रकार ढक दो, जिससे उसे वायु तथा सूर्य भी न देख सकें।

विदुरस्तं तथेत्युक्त्वा भीष्मेण सह भारत।
पाण्डुं संस्कारयामास देश परमपूजिते।।5।।

वैशम्पायन जी कहते हैं- "राजन्! विदुर ने धृतराष्ट्र से 'तथास्तु' कहकर भीष्म जी के साथ परम पवित्र स्थान में पाण्डु का अन्तिम संस्कार कराया।"

इसके बाद श्लोक संख्या 24 तक दाह संस्कार की तैयारी व दाह संस्कार का विस्तार से वर्णन किया गया है। गीता प्रेस वाले भले ही माद्री, पाण्डु, देह, शरीर आदि का अर्थ 'अस्थियाँ' लिखते रहें, पर वे शरीर (शव) ही थे, क्योंकि ऐसा व्यवहार शरीरों के साथ ही हो सकता है, अस्थियों के नहीं। देखिये-

नृसिंह नरयुक्तेन परमालंकृतेन तम्।
अवहन् यानमुख्येन सह माद्रया सुसंयतम्।।9।।
न्यासयामासुरथ तां शिबिकां सत्यवादिनः।
सभार्यस्य नृसिंहस्य पाण्डोरक्लिष्ट कर्मणः।।17।।
ततस्तस्य शरीरं तु सर्वगन्धाधिवासितम्।
शुचिकालीयकादिग्धं दिव्यचन्दनरूषितम्।।18।।
पर्यषिञ्चञ्जलेनाशु शातकुम्भमयैर्घटैः।
चन्दनेन च शुक्लेन सर्वतः समलेपयन्।।19।।
संछन्नः स तु वासोभिर्जीवन्निव नराधिपः।
शुशुभे स नरव्याघ्रो महार्हशयनोचितः।।21।।
याजकैरभ्यनुज्ञाते प्रेतकर्मण्यनुष्ठिते।
घृतावसिक्तं राजानं सह माद्र्या स्वलंकृतम्।। 22।।
ततस्तयोः शरीरे द्वे दृष्ट्वा मोहवशं गता।
हा हा पुत्रेति कौसल्या पपात सहसा भुवि।। 24।।

"माद्री सहित राजा पाण्डु को अलंकृत गाड़ी में पालकी सहित रखा। उनके शरीरों पर दिव्य सुगन्धित चन्दन लगाया हुआ था। उन्हें पवित्र जल से स्नान

शेष पृष्ठ 11 पर

श्वेताश्वतरोपनिषद् में त्रैतवाद

(उत्तरा नेरुरकर, बंगलौर, मो. 09845058310)

सौ से अधिक उपनिषदों में से दस मुख्य माने गए हैं, इसलिए कि शंकराचार्य ने उसके भाष्य लिखे हैं। अवश्य ही वे उस समय प्रसिद्धतम होंगे, इसीलिए उन्होंने उनपर भाष्य भी लिखे। फिर उनके मतानुयायियों ने दस की और भी प्रसिद्धि कर दी। एक उपनिषद् और भी है, जिस पर शंकर ने भाष्य लिखा। वह है श्वेताश्वतर। इसमें त्रैतवाद इतनी स्पष्टतया दिया गया है कि सम्भवतः शंकर भी उसको अद्वैतवाद का चोगा ठीक से नहीं पहना सके। इसलिए इस उपनिषद् को सम्भवतः वेदान्ती इतनी प्राथमिकता नहीं देते हैं। इस लेख में मैं श्वेताश्वतर के इस अंश पर प्रकाश डाल रही हूँ।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में, अन्य उपनिषदों के समान, जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध पर विषद विचार किया है, परन्तु उसका मुख्य विचारणीय विषय, जिसको कि ऋषि ने प्रथम श्लोक में ही कह दिया है - इस ब्रह्माण्ड के कारण, जीवों की उत्पत्ति और उनके सुख-दुःख की व्यवस्था के हेतु। मानव का पुरातन प्रश्न- हम कहां से आए हैं और कहां जा रहे हैं- को इसमें उठाया गया है, और उसका उत्तर सुष्ठुतया दिया गया है। वास्तव में, यह उपनिषद् सम्भवतः सब उपनिषदों में से सबसे स्पष्ट रूप से परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति का व्याख्यान करता है। ध्यान की प्रक्रिया भी यहाँ स्पष्ट शब्दों में दी गई है। काव्यात्मक दृष्टि से भी यह अति सुन्दर है। इनके श्लोक अनेकों प्रकरणों में दोहराए जाते हैं। अनन्य भक्ति से ये सभी ओत-प्रोत हैं। इस उपनिषद् में अधिकतम वेद-मन्त्र भी उल्लिखित हैं। चुने हुए सबसे बढ़िया वेद-मन्त्र यहाँ होने के कारण, जो भी वेदों से परिचित होना चाहता है, उसे इस उपनिषद् को अवश्य पढ़ना चाहिए।

त्रैतवाद का प्रधान उपमात्मक वेदमन्त्र यहाँ जैसा का तैसा दिया गया है-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।। 4/6।।

अर्थात् (इस संसार में,) दो सुन्दर गुण-रूपी पंखों वाले पक्षी हैं (परमात्मा और जीवात्मा), जो कि साथ-साथ रहते हैं और एक-दूसरे के सखा हैं, एक ही वृक्ष (संसार) से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। उनमें से एक (जीव) तो पेड़ के फलों (सांसारिक भोगों) को स्वाद ले-लेकर खाता है, जबकि दूसरा, बिना कुछ भी खाए हुए, उसको देखता रहता है। बड़े संक्षेप में और बहुत ही सुन्दरता से इस मन्त्र में तीन अस्तित्वों और उनके सम्बन्ध का वर्णन हो जाता है।

श्वेताश्वतर ऋषि ने इसको और भी आगे बढ़ाया, और कहा-

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो-
ऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीश-
मस्य महिमानमिति वीतशोकः।।4/7।।

उसी वृक्ष पर पुरुष, अर्थात् जीवात्मा, तो भोगों में निमग्न रहता है। इस कारण वह प्रकृति के वशीभूत होकर, साँसारिक वस्तुओं से मोह करता हुआ, दुःखों को प्राप्त होता रहता है परन्तु जब वह, अपने द्वारा ध्यान से सेवित किए जाने पर, अपने से अन्य ईश को देखता है, और उसकी महिमा का उसको बोध होता है, तब वह सब शोकों से दूर हो जाता है। कितनी सुन्दरता से ऋषि ने, वेद-मन्त्र की शैली में ही, परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग बता दिया। साथ-साथ उन्होंने परमात्मा और जीवात्मा की भिन्नता को विस्पष्ट कर दिया। इनको अब एक बताना मूर्ख ही करेगा।

इससे पूर्व ऋषि ने एक और श्लोक रचा है-

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।।4/5।।

(इस ब्रह्माण्ड में) एक अजन्मी, या उपमा से, एक अजा - बकरी (प्रकृति) है जो कि लाल, सफेद और काले रंग (रज, सत्व और तम) वाली है। वह अपने जैसे रूप में बहुत प्रजाओं (वस्तुओं) को सृजती है, जन्म देती है। एक अजन्मा, या अज - बकरा (जीवात्मा), उसका भोग करता हुआ लेटता है, जबकि दूसरे एक अजन्मे, या बकरे (जीवात्मा), ने पहले ही उस बकरी का भोग करके उसको त्याग दिया है। जहाँ यह उपमा जीव और प्रकृति के सम्बन्ध में विस्पष्ट है ही, वहाँ यह देखने योग्य है कि विरक्त आत्मा का ब्रह्म से एकत्व नहीं कहा गया है- उसे अलग ही माना गया है। 'अजन्मा' होने का भी अर्थ है कि आत्मा किन्हीं वस्तुओं के संयोग या परिणाम से नहीं उत्पन्न हुआ है, परन्तु उसकी सत्ता भी अनादि है। यदि जीवात्मा परमात्मा का विकार होता तो उसे जन्म-वाला ही मानना पड़ता, जिस प्रकार प्रकृति के सभी विकारों का -जन्म; बताया गया है। इसी प्रकार प्रकृति को भी 'अजा' कहा गया है। उसको परमात्मा मानना तो घोर मूर्खता है।

अन्य एक श्लोक तीन सत्ताओं में भेद बताता है-

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशा-
वजा ह्येका भोक्तृभेग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता
त्रयं यदा विन्दते ब्रह्मेतत्।। 1/9।।

अर्थात् दो अज हैं, एक तो ज्ञ है- जानने वाला है, सर्वज्ञ है; दूसरा अज्ञ है- कम जानता है; एक सब पदार्थों का प्रभु है, दूसरा उसके वश में रहता है; और तीसरी एक अजा भोक्ता के भोग के लिए युक्त होती है। जब यह जीव, जो कि अनन्त आत्मा है, अनेक शरीर धारण करने से 'विश्वरूप' है और अकर्ता है (क्योंकि शरीर ही कर्ता है), इन तीनों सत्ताओं को जान लेता है, तब वह ब्रह्म को पा लेता है। इससे स्पष्ट रूप से और क्या कहा जा सकता है?!

अन्य एक सुप्रसिद्ध श्लोक परमात्मा का स्वरूप बताता है-

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।। 6/8।।

अर्थात् उस परमात्मा का न कार्य, न करण है। उसके बराबर ही कोई नहीं दिखता, तो उससे अधिक का तो कहना ही क्या! उसकी शक्ति सबसे अधिक है और विविध प्रकार की है, ऐसा वेदादि शब्द प्रमाण हैं। उसमें ज्ञान, बल और क्रिया स्वाभाविक रूप से वर्तमान है। जैसे जीव में प्रकृति के सहारे से ज्ञान, बल और क्रिया होती है, ऐसा परमात्मा के विषय में सत्य नहीं है। इस पूरे ही वर्णन से स्पष्ट है कि जीवात्मा कभी भी परमात्मा का विकार नहीं हो सकता। जिसका कार्य ही नहीं है, तो विकार कैसे मानें? जिसका कोई सहाय के लिए उपकरण नहीं है, जिसके कोई बराबर नहीं है, जिसकी शक्ति अपार है, जिसका ज्ञान, बल और क्रिया अपने स्वरूप से ही है, वह एक क्षुद्र प्राणी में कैसे संकुचित हो जायेगा?

तथापि एक श्लोक है, जिसमें यह सन्देह होता है कि सम्भवतः अद्वैतवाद का ऋषि समर्थन कर रहे है-

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं
नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा
सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्।। 1/12।।

जिसका अर्थ है- यह देव (पिछले श्लोक से), जो सदा ही हमारी आत्मा के अन्दर बैठा होता है, जानने योग्य है। इससे बढ़कर कुछ भी जानने योग्य नहीं है। भोक्ता (जीवात्मा), भोग्य (प्रकृति) और प्रेरिता (परमात्मा) को जानकर, सब (जान लिया जाता है)। (इस प्रकार) यह तीन प्रकार का ब्रह्म कहा गया है। सो, यहाँ यह समझा जा सकता है कि ये तीनों ब्रह्म के रूप हैं। यहाँ 'ब्रह्म' से 'परमात्मा' समझना इसलिए गलत है क्योंकि, इससे पहले, श्लोक के बाद श्लोक में भोक्ता, भोग्य

और प्रेरिता के भेद को पुनः पुनः कहा गया है। 1/6 में भी स्पष्टतः कहा गया है-

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते
अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा
जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति।। 1/6।।

अर्थात् ब्रह्माण्ड के प्रेरक को अपने से अलग जानकर, और फिर उसका ध्यान आदि से सेवन करके जीव अमृतत्व प्राप्त कर लेता है। इस श्लोक में ब्रह्माण्ड को 'ब्रह्मचक्र' कहा गया है, जिसको कि परमात्मा घुमाता है। इससे भी हमें संकेत मिलता है कि प्रकृत् श्लोक में 'ब्रह्म' का अर्थ 'परमात्मा' न होकर, 'ब्रह्माण्ड' ही है।

नीचे दिए वैदिक मन्त्र, जिनका उल्लेख उपनिषद् में हुआ है, को भी अद्वैतवाद में घटाया जा सकता है-

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदापस्तत् प्रजापतिः।। 4/2।।
त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः।। 4/3।।

परन्तु इन सभी स्थलों पर परमात्मा को ही प्रकृति के विकार या जीवात्मा मानना ऋषि के अन्य सभी वचनों को नकारने और दुराग्रह से अपने मत को स्थापित करने के तुल्य होगा।

उपर्युक्त से अन्यत्र, वस्तुतः सर्वत्र, श्वेताश्वतर ऋषि ने परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति की भिन्न सत्ता, उनके भिन्न गुण-कर्म-स्वभाव को दर्शाया है। उन्होंने यह भी कहा है कि परमात्मा अपने ही गुणों से छुपा हुआ है- **देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् (1/3),** और यह कि उसे समाधि में ही पाया जा सकता है। इस पर भी विशेष ध्यान देना आवश्यक है यदि इस संसार में परमात्मा को बुद्धि से, या मन से, ढूढेंगे, तो हमें कभी भी कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। इसलिए उपनिषद् में ध्यान लगाने की प्रक्रिया का भी विषद वर्णन है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि जिस सुन्दरता और स्पष्टता से यह उपनिषद् ब्रह्माण्ड के गूढ़ प्रश्नों का उत्तर देता है और मोक्ष का मार्ग बताता है, उतना सम्भवतः किसी भी उपनिषद् में नहीं दिया गया है। उपनिषदों में श्वेताश्वतरोपनिषद् एक अन्परखा रत्न है।

❑❑

पृष्ठ 8 का शेष

कराया गया था। वस्त्रों से ढके हुए राजा पाण्डु जीवित के समान शोभा पा रहे थे। (सोचिये, क्या अस्थियाँ भी जीवित के समान शोभा पाती हैं?) अस्थियों में उलझे गीताप्रेस वालों से आखिर सत्य निकल ही गया। 22वें श्लोक की व्याख्या में लिखा है- "याजकों की आज्ञा लेकर प्रेतकर्म (दाह संस्कार) आरम्भ करते समय माद्री सहित अलंकार युक्त राजा का घृत से अभिषेक किया गया।"

"उन दोनों के शरीरों को चिता में देखकर माता कौसल्या (अम्बालिका) हाय पुत्र! कहकर भूमि पर गिर पड़ी।"

इतना स्पष्ट होने पर भी केवल सतीप्रथा को महाभारत से सिद्ध करने के लिए गीताप्रेस के विद्वान् स्वार्थ पर अड़े हुए अर्थ का अनर्थ कर रहे हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसी मानसिकता के लोगों ने ही महाभारत यह (माद्री सती) प्रसंग जोड़ा है और ऐसे ही स्वार्थी लोगों ने सती के नाम पर बेचारी विधवाओं को जबरदस्ती चिता में फिंकवाया था। प्रबुद्ध समाज ऋषियों के ग्रन्थों से धूर्तता भरी कहानियाँ हटाने के लिए आन्दोलन करे, तभी आर्यों के ये ग्रन्थ इतिहास में स्थान पर सकते हैं। यद्यपि कोई भी मत, मजहब, देश धर्मग्रन्थ निर्दोष नहीं है तथापि मुझे तो अपने घर की चिन्ता है क्योंकि पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय जी कहा करते थे- "दस मन संखिया यदि हमारे शरीर के बाहर पड़ी रहे तो इससे हमको इतना भय नहीं है। परन्तु यदि एक रत्ती संखिया भी हमारे शरीर के भीतर प्रविष्ट हो जाये, तो शीघ्र ही हमारी मृत्यु हो जायेगी।"

❑❑

स्वतन्त्रता पर्व का सन्देश

(धर्मपाल आर्य)

संसार में हर प्राणी को स्वतन्त्रता प्रिय है। बिना स्वतन्त्रता व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र मरे हुए के समान है। स्वतन्त्रता, सुख का और परतन्त्रता दुःख का कारण मानी जाती है दूसरे शब्दों में मैं कह सकता हूँ कि सुख के लक्षणों में एक मुख्य लक्षण स्वतन्त्रता और दुःख के लक्षणों में एक मुख्य लक्षण परतन्त्रता माना गया है। इस विषय में संस्कृत के किसी विद्वान् ने बहुत सुन्दर लिखा है कि-

सर्वं परवशं दुःखं सर्वम् आत्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात् समासेन लक्षणेन सुखदुःखयोः।

अर्थात् पराधीनता सबसे बड़ा दुःख और स्वाधीनता सबसे बड़ा सुख है। संक्षेप में यही सुख दुख का लक्षण है। आजादी के बिना हम समृद्ध राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते। स्वतन्त्रता के बिना सशक्त समाज की सम्भावना समाप्त हो जाती है। आजादी के बिना राष्ट्र एकता के सूत्र में नहीं बंध सकता। बिना आजादी के राष्ट्र के नागरिकों का नैतिक, राजनीतिक, चारित्रिक और आर्थिक विकास नहीं हो सकता। बिना आजादी के राष्ट्र के नागरिकों का नैतिक, राजनीतिक, चारित्रिक और आर्थिक विकास नहीं हो सकता। बिना आजादी के न्याय स्थापना नहीं हो सकती। बिना आजादी के मानव और मानवता निष्प्राण है। बिना आजादी के सामाजिक समरसता का नाम-निशान मिट जाता है, तभी हमारे ऋषियों को कहना पड़ा कि अदीनाः स्याम शरदः शतम् अर्थात् सौ शरदों तक (वर्षों तक) अदीन (दीनता, गुलामी या पराधीनता से रहित) जीवन जीते रहें। आजादी वटवृक्ष के समान है, जिसकी छत्र-छाया में समाज फलता-फूलता है। सर्वथा स्पष्ट है कि किसी राष्ट्र और समाज के लिए आजादी का कितना महत्व है। एक बार लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने कहा था कि स्वतन्त्रता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और में इसे लेकर रहूँगा। नेताजी सुभाष चन्द्र जी बोस का भी उद्घोष था कि तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ही सर्वप्रथम स्वतन्त्रता का शंखनाद किया था। अंग्रेजी शासन के खिलाफ निर्भीकता के साथ जनजागरण का अभियान स्वराज्य प्राप्ति की दिशा में महर्षि दयानन्द का एक निर्णायक कदम था। यही कारण था कि आजादी के आन्दोलन में ज्यादातर क्रान्तिकारी/आन्दोलनकारी आर्यसमाज की विचारधारा से प्रभावित थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति की उन क्रान्तिकारियों को इतनी लगन थी कि जो फाँसी की पीड़ा को भी हंसते-हंसते सह गये। क्रान्तिकारियों की वो प्रेरणादायी पंक्तियाँ आज भी भारतीयों के मन और मस्तिष्क में आजादी के लिए उमंग पैदा करती है कि-

इलाही वह भी दिन होगा; जब अपना राज देखेंगे।
अपनी ही जमीं होगी और अपना आसमां होगा।

इतनी निर्भकता, इतना समर्पण, इतना त्याग, अपार यातनाओं को सहना, आजादी के महत्व को दर्शाने के लिए काफी है। मैं यहाँ उन सभी क्रान्तिकारियों का उल्लेख करने लगूँ तो उसके लिए मेरा लेख बहुत छोटा पड़ जायेगा। उन असंख्यों बलिदानियों के बलिदानों के परिणामस्वरूप ही हमें 15 अगस्त 1947 को आजादी हासिल हुई। आज हमें लगभग 67 वर्ष आजाद हुए हो गये। आज हम सबके लिए आत्म चिन्तन, आत्ममन्थन का विषय है कि हमारे अमर शहीदों ने जिस राष्ट्र की कल्पना कर अपने जीवन को स्वतन्त्रता के यज्ञ में आहुति बना दिया क्या हम उनके सपनों का भारत बना पाये हैं, यदि हम उनके सपनों का भारत नहीं बना पाये तो क्या यह हमारी असफलता नहीं है? आजादी को जिन असंख्य बलिदानों की कीमत देकर हमने हासिल किया था, उसे सुरक्षित रखने की आज हम सबके सामने चुनौतियां भी कम नहीं हैं। आज हम सबको उन

चुनौतियों का अध्ययन कर मिलकर मुकाबला करने की आवश्यकता है। जो समाज, राष्ट्र अपनी आजादी को सुरक्षित नहीं रख पाता, उसका अस्तित्व इतिहास के कुछ पन्नों तक ही सिमट कर रह जाता है। जिस राष्ट्र ने संघर्ष और बलिदान देकर आजादी प्राप्त करने का स्वर्णिम इतिहास बनाया आज उसके नागरिकों को उससे अधिक आजादी को बचाने के लिए संघर्ष और बलिदान की आवश्यकता है। स्वतन्त्रता से पूर्व राष्ट्र जिन समस्याओं, संकटों का सामना कर रहा था, स्वतन्त्रता के बाद भी वे समस्याएँ जीवित हैं। चाहे जातिवाद की समस्या हो, चाहे पाखण्ड हो, चाहे अशिक्षा हो, चाहे गरीबी हो, चाहे भ्रष्टाचार हो, चाहे समाज व राजनीति में अपराधीकरण हो, चाहे असमानता हो ऐसी असंख्यों समस्याएं हैं, जिनसे राष्ट्र/समाज आजादी के बाद भी पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाया है। हम स्वतन्त्रता के इस पर्व को न केवल अपने देश में अपितु विदेशों में भी बड़े हर्ष और उल्लास के साथ मनाते हैं, मनाना भी चाहिए लेकिन हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी, स्वामी श्रद्धानन्द जी, पं० लेखराम जी, पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जी, सरदार भगत सिंह जी, मदन लाल ढींगड़ा जी इत्यादि असंख्यों क्रान्तिकारी बलिदानी थे, जिन्होंने अखण्ड भारत का, समृद्ध भारत का, विश्वगुरु भारत का, शान्तिप्रिय भारत का, ज्ञान-विज्ञान के भण्डार भारत का, संस्कृति और सभ्यता से ओत-प्रोत भारत का, वसुधैव कुटुम्बकम् की पावन भावना से परिपूर्ण भारत का, हवियों से सुगन्धित वेद की पवित्र ऋचाओं से गुञ्जित भारत का, सामाजिक सद्भाव और समरसता से सराबोर भारत का तथा पारस्परिक सौहार्द संयुक्त भारत का स्वर्णिम सपना देखा था, उसे साकार करने का भी हम सबको सामूहिक संकल्प लेना चाहिए। 15 अगस्त का पावन पर्व हमारे लिए प्रेरणा दिवस जबकि हमारे असंख्यों क्रान्तिकारी बलिदानी हमारे लिए प्रेरणास्रोत हैं। स्वतन्त्रतापर्व केवल कुछ कार्यक्रमों, प्रदर्शनों, समारोहों, गीतों-भाषणों की अनिवार्य औपचारिकता तक सिमटकर न रह जाए बल्कि उस सबके साथ राष्ट्र के नवनिर्माण की दृढ़ इच्छाशक्ति भी झलकनी चाहिए। आजादी हमारे क्रान्तिकारियों/बलिदानियों के बलिदान से विरासत में मिली सौगात है, जिसको सुरक्षित रखने का पूर्ण दायित्व हमारा है, उसे निभाने का संकल्प हमें लेना होगा। आजादी पूर्वजों से प्राप्त वरदान है, यदि हमने इसका सदुपयोग नहीं किया, तो इस आजादी के वरदान को गुलामी के अभिशाप में परिवर्तित होते देर नहीं लगेगी। इस विषय में मुझे श्री रामधारी दिनकर की निम्न पंक्तियाँ याद आ रही हैं, जिनमें उन्होंने हमको प्रेरणा देते हुए लिखा है कि

ढीली करो धनुष की डोरी तरकश का कश खोलो।
किसने कहा युद्ध की बेला गई शान्ति से बोलो।

विजय प्राप्ति से पूर्व तो युद्ध विराम तो हो ही नहीं सकता। वे वीर सपूत गुलामी के अभिशाप से लड़े उसके बाद जो समस्याएं या चुनौतियाँ चाहे प्रत्यक्ष हों, अप्रत्यक्ष हों, आन्तरिक हों या फिर बाह्य हों उन सबसे हम सबको संगठन के सूत्र में बंधकर लड़ना है और तब तक लड़ना है, जब तक उन पर हम निर्णायक विजय हासिल न कर लें। अभी हमारी शपथ अधूरी है इसे पूर्ण करने का दृढ़ संकल्प इस अवसर पर लेना चाहिए; किसी कवि ने लिखा है

पन्द्रह अगस्त का दिन कहता, आजादी अभी अधूरी है।
सपने सच होने बाकी हैं रावी की शपथ अधूरी है।
जिनकी लाशों पर पग धर कर आजादी भारत में आयी।
वे अब तक खानाबदोश गम की काली घटा छायी।
भारत के फुटपाथों पर जो आंधी पानी सहते हैं
उनसे पूछो पन्द्रह अगस्त के बारे में क्या कहते हैं?

अन्त में मैं अपने लेख को इस आशा के साथ विराम देता हूँ कि हम इस पावन पर्व पर ऋषियों, मुनियों, साधुओं, साधकों, तपस्वियों, योगियों, योगर्षियों, राज्यों, वीरों धीरों, शहीदों, क्रान्तिकारियों के सपनों का भारत बनाने का दृढ़ संकल्प लेंगे। यह हमारी देश के अमर शहीद वीर सपूतों को सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

❑❑

अबला नहीं सबला है वेदोक्त नारी

(डॉ० विवेक आर्य, मो. 9310679090)

"अबला तेरी यही कहानी, आँचल में दूध और आँख में पानी"

मध्य काल में नारी जाति की विकट स्थिति को देखकर कवियों ने नारी का चित्रण भी दरिद्र एवं दुःखी रूप में किया है। इसका प्रमुख कारण वेदों के ज्ञान का प्रचार-प्रसार न होना था। धन्य हैं स्वामी दयानंद का जिनके प्रताप से नारी जाति में शक्षिा का प्रचार प्रसार हुआ, जिसके फलस्वरूप आज नारी पुरुष से कंधे से कन्धा मिलाकर चल रही है। संसार की किसी भी धर्म पुस्तक में नारी जाति की महिमा का इतना सुंदर गुण गान नहीं मिलता, जितना वेदों में मिलता है। कुछ उदाहरण देकर हम अपने कथन को सिद्ध करेंगे।

1. उषा के समान प्रकाशवती- हे राष्ट्र की पूजा योग्य नारी! तुम परिवार और राष्ट्र में सत्यम्, शिवम्, सुंदरम, की अरुण कान्तियों को छिटकती हुई आओ, अपने विस्मयकारी सद्गुणों के द्वारा अविद्या ग्रस्त जनों को प्रबोध प्रदान करो। जन-जन को सुख देने के लिए अपने जगमग करते हुए रथ पर बैठ कर आओ।

2. वीरांगना- हे नारी! तू स्वयं को पहचान। तू शेरनी है, तू शत्रु रूप मृगों का मर्दन करने वाली है, देवजनों के हितार्थ अपने अन्दर सामर्थ्य उत्पन्न कर। हे नारी! तू अविद्या आदि दोषों पर शेरनी की तरह टूटने वाली है, तू दिव्य गुणों के प्रचारार्थ स्वयं को शुद्ध कर। हे नारी! तू दुष्कर्म एवं दुर्व्यसनों को शेरनी के समान विध्वस्त करने वाली है, धार्मिक जनों के हितार्थ स्वयं को दिव्य गुणों से अलंकृत कर।

3. वीर प्रसवा- राष्ट्र को नारी कैसी संतान दे- हमारे राष्ट्र को ऐसी अद्भुत एवं वर्षक संतान प्राप्त हो जो उत्कृष्ट कोटि के हथियारों को चलाने में कुशल हो, उत्तम प्रकार से अपनी तथा दूसरों की रक्षा करने में प्रवीण हो, सम्यक् नेतृत्व करने वाली हो, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप चार पुरुषार्थ- समुद्रों का अवगाहन करनेवलाी हो, विविध संपदाओं की धारक हो, अतिशय क्रियाशील हो, प्रशंसनीय हो, बहुतों से वरणीय हो, आपदाओं की निवारक हो।

4. विद्या अलंकृता-विदुषी नारी अपने विद्या-बलों से हमारे जीवनों को पवित्र करती रहे। वह कर्मनिष्ठ बनकर अपने कर्मों से हमारे व्यवहारों को पवित्र करती रहे। अपने श्रेष्ठ ज्ञान एवं कर्मों के द्वारा संतानों एवं शिष्यों में सद्गुणों और सत्कर्मों को बसाने वाली वह देवी गृह आश्रम-यज्ञ एवं ज्ञान-यज्ञ को सुचारू रूप से संचालित करती रहे।

5. स्नेहमयी माँ- हे प्रेमरसमयी माँ!

तुम हमारे लिए मंगल कारिणी बनो, तुम हमारे लिए शांति बरसाने वाली बनो, तुम हमारे लिए उत्कृष्ट सुख देने वाली बनो। हम तुम्हारी कृपा दृष्टि से कभी वंचित न हों।

6. अन्नपूर्णा- इस गृह-आश्रम में पुष्टि प्राप्त हो, इस गृह-आश्रम में रस प्राप्त हो, इस गृह-आश्रम में हे देवी! तू दूध-घी आदि सहस्रों पोषक पदार्थों का दान कर। हे यम-नियमों का पालन करने वाली गृहणी। जिन गाय आदि पशु से पोषक पदार्थ प्राप्त होते हैं, उनका तू पोषण कर।

अंत में मनुस्मृति के प्रचलित श्लोक से इस विषय को विराम देना चाहेंगे। संसार में नारी जाति को सम्मान देने के लिए इससे सुन्दर शब्द शायद ही कहीं मिलेंगे।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

जिस कुल में नारियों की पूजा, अर्थात् सत्कार होता है, उस कुल में दिव्यगुण, दिव्य भोग और उत्तम संतान होते हैं और जिस कुल में स्त्रियों की पूजा नहीं होती, वहाँ जानो उनकी सब क्रिया निष्फल हैं।

❑❑

उर्मिला से भी आगे ....

(इन्द्रजित् देव)

मर्यादा पुरुषोत्तम राम को जब 14 वर्षों के लिए वन गमन का आदेश कैकेयी ने सुनाया तो राम जी ने सहर्ष स्वीकार किया। उनकी धर्मपत्नी भी साथ गई तथा अनुज लक्ष्मण भी पीछे नहीं रहे परन्तु लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला नहीं गई। वे क्यों नहीं गईं, इस विषय में रामायण के रचनाकार ऋषि वाल्मीकि ने कुछ नहीं लिखा। पति-वियोग में उर्मिला ने 14 वर्ष किस प्रकार मानसिक व शारीरिक अवस्था में व्यतीत किए, यह वही जान सकते हैं, जिन पर ऐसी घटना घटित होगी या हुई होगी परन्तु इतना निश्चित है कि जनकसुता उर्मिला का त्याग व योगदान उपलब्ध इतिहास में अपूर्व था। उनके इस योगदान के बिना लक्ष्मण अपने अग्रज व अपनी भाभी की सेवा व सुरक्षा के प्रति अपनी निष्ठा का दृढ़ता व सफलता से पालन नहीं कर सकते थे। आज लक्ष्मण इतिहास में अपने चरित्र व समर्पण के आधार पर आदर्श भाई व देवर स्थापित हैं। अंग्रेजी की कहावत Behind every great man there is a woman अर्थात् प्रत्येक महापुरुष की सफलता के पीछे किसी महिला का योगदान होता है, लक्ष्मण व उर्मिला के जीवन पर पूर्णतः सही लागू होती है।

उर्मिला को वाल्मीकि ने ही नहीं, कालिदास, भवभूति, तुलसीदास तथा अन्य किसी संस्कृत व हिन्दी कवि ने वर्णनीय नहीं समझा। हाँ, आधुनिक काल में मैथिलीशरण गुप्त ने अपना महाकाव्य "साकेत" में कुछ सीमा तक उपस्थित किया है परन्तु वह साहित्यिक दृष्टि से स्वागत योग्य है, मार्मिक है परन्तु उर्मिला के समकालीन ऋषि वाल्मीकि ने ही जब कुछ विशेष वर्णन नहीं किया तो अन्यों से शिकायत कैसी?

अभी जब भारतीय लोकसभा के चुनावों की प्रक्रिया चल रही थी, तो एक आधुनिक उर्मिला का नाम प्रकट हुआ है, जिसका नाम जशोदाबेन है। वह 45-50 वर्षों से पति से पृथक् पिता के घर में रहकर शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करती रही है। इसका विवाह छोटी अवस्था में हो गया था व तरुणावस्था में ही इसके पति नरेन्द्र मोदी अपनी इच्छा से एक राष्ट्रीय गठन को अर्पित हो चुके थे व गृहस्थ के कार्यों तक सीमित - होने तथा गृहस्थ आश्रम में टिकने की उनकी प्रवृत्ति न थी। अब वे प्रधनमंत्री बन गए हैं। चुनाव अभियान के दिनों में उनके इस कार्य को विपक्षियों ने नारी वर्ग - का अपमान बताया था व स्त्री जाति के प्रति उपेक्षा करने का प्रमाण घोषित किया था जो उनके अपने राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए साधन ही था।

ऐसे लोगों को हम स्मरण दिलाते हैं कि छत्रपति शिवाजी के गुरु समर्थ गुरु रामदास का जब विवाह संस्कार हो रहा था तो महाराष्ट्र की स्थानीय परम्परानुसार एक अवसर पर पुरोहित ने उन्हें कहा- "सावधान!" यह सुनते ही समर्थ गुरु ने कहा- "बहुत-बहुत धन्यवाद पुरोहित जी।" यह कहकर उन्होंने विवाह मण्डप छोड़ दिया व बिन विवाह किए चले गए। विवाह अधूरा ही रह गया। मण्डप में बैठी वधू पर क्या बीती व भविष्य में क्या हुआ, मुझे नहीं पता पर इतना निश्चित है कि रामदास जी विवाह-मण्डप से ही उठ गए थे। क्या नरेन्द्र मोदी के विरोधी रामदास गुरु को स्त्री जाति का विरोधी घोषित करने का साहस करेंगे? इसी प्रकार स्वामी रामतीर्थ ने अपनी पत्नी की इच्छा/स्वीकृति के बिना उसका परित्याग करके संन्यास ग्रहण कर लिया

था व देश विदेश में अपने उपदेशों से भारत को ख्याति दिलाई थी। क्या विपक्षी रामतीर्थ को अपनी पत्नी का अपमान करने वाला स्वीकारते हैं? आदि शंकराचार्य बाल्यावस्था में ही वैराग्य की ओर अग्रसर हो रहे थे परन्तु उनकी माता उन्हें संन्यास लेने से रोकती रहीं। एक दिन माता को उन्हें स्वीकृति देनी ही पड़ी थी तथा वे माता को अकेली छोड़कर संन्यासी बन ही गए थे। स्पष्ट है, उन्होंने माता की सेवा नहीं की। क्या आदि शंकराचार्य को इस आधार पर मातृशक्ति का शत्रु इतिहास में किसी ने माना है? आज से अढ़ाई सहस्र वर्ष पूर्व कपिलवस्तु का राजकुमार सिद्धार्थ एक रात चुपचाप राजमहलों, अपनी पत्नी यशोधरा व नवजात पुत्र राहुल को त्यागकर वन में चला गया था। बाद में यही सिद्धार्थ महात्मा बुद्ध बनकर संसार में प्रसिद्ध हुआ व इतिहास में नारी जाति का द्रोही उसको किसी ने नहीं कहा। गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी पत्नी के कहने से ही ईशभक्ति का जो मार्ग ग्रहण किया, उसमें सैद्धान्तिक स्तर पर हमारा मतभेद हो सकता है परन्तु उन पर अपनी पत्नी को बीच में छोड़कर भाग जाने का आरोप किसी ने नहीं लगाया। सुकवि कालिदास ने भी पत्नी का त्याग किया परन्तु इतिहास में संस्कृत के श्रेष्ठ साहित्यकारों में अपना काम व नाम स्थापित करके स्वयं व भारत को गौरवान्वित किया है। इसी प्रकार गुजरात प्रान्त के टंकारा नाम गांव में उत्पन्न हुए मूलशंकर के - माता-पिता ने जब उसकी इच्छा के विरूद्ध उसके विवाह की तैयारी कर ली थी, तब वह एक रात घर, माता, पिता व भाई-बहनों को सोता छोड़कर चुपचाप चला गया था। माताजी की सेवा वह भी न कर पाया परन्तु अन्धविश्वासों से ग्रस्त व वेदों से विमुख संसार को अपनी घोर तपस्या व कठिन साधना से प्राप्त शारीरिक व आध्यात्मिक शक्ति द्वारा जो उपकार किए, वे अपूर्व हैं, अनुपम हैं। यही मूलशंकर संन्यासी बनकर महर्षि दयानन्द सरस्वती नाम से सुविख्यात हुआ। एक और महापुरुष का नाम इस संदर्भ में उल्लेखनीय है वे हैं- मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र। उनके पिता दशरथ द्वारा कैकेयी को दिए दो वरों का अनुचित लाभ लेने के कैकेयी के कुप्रयास से ही राम को वन जाना पड़ा परन्तु वे वन में जाएं, ऐसा न ही दशरथ चाहते थे तथा न ही कौशल्या की इच्छा थी। पिता दशरथ तो यहाँ तक कह बैठे कि हे राम! तेरे वन जाने से मैं न बचूँगा। मैं तो वचनों में बन्धा हूँ। प्रजा तुम्हारे साथ है। तुम मुझे बन्दीगृह में डालकर राजा बन जाओ। मैं बच जाऊँगा।" क्या राम ने माता-पिता की इच्छा पूर्ण की? क्या माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध उनके वनगमन को अधर्म कहने का कोई व्यक्ति या राजनैतिक दल दुस्साहस कर सकता है?

मैं नरेन्द्र मोदी व जशोदाबेन के प्रसंग में यह निवेदन करना चाहता हूँ कि जब कोई अपनी और केवल अपनी शारीरिक व भौतिक इच्छाओं व आवश्यकताओं की ही पूर्ति में स्वयं को अर्पित कर देता है तो वाह सामान्य व्यक्ति ही कहलाता है परन्तु जब व्यक्ति अपने घोंसले में न रहकर उड़ने को विस्तृत गगन तलाशता है, तब उच्च आदर्श तथा उच्च विचारवालों 'के सामने परिवार से भी अधिक लोकहित रहता है। यदि कोई आलोचक उसे माता, पिता, पत्नी व पति की सेवा करता हुआ देखना चाहता है तो उसका ऐसा प्रयास या ऐसी इच्छा करना ऐसा ही है, जैसे कोई गगन-विहारी पक्षी को घोंसले में सीमित करता है। समुद्र को घड़े में भरने की चेष्टा भी उसे आप कह सकते हैं। परंतु याद रखिए कि समुद्र घड़े में समा ही नहीं सकता इसी कारण दयानन्द, राम, शंकराचार्य, रामतीर्थ, समर्थ गुरु रामदास तथा बुद्ध घर-परिवार तक सीमित नहीं रहे। लौकिक व पारिवारिक कामनाओं से आगे राष्ट्रीय व आध्यात्मिक इच्छाओं का वरण करना पाप नहीं। अतः स्वहित से अधिक लोकहित को ही मुख्य रखकर घर-परिवार का

शेष पृष्ठ 19 पर

पाकिस्तान का स्थापना दिवस दिनांक 14 अगस्त 1947

(इन्द्र देव, म्यंमार वाले, एवं राजेश गोयल, वीर सावरकर पुस्तकालय एवं वाचनालय)

पाकिस्तान को लाहौर कैसे मिला?

• 23 मार्च 1940 को मुस्लिम लीग ने लाहौर अधिवेशन में पाकिस्तान बनाने का प्रस्ताव पारित किया।

• 1941 में जनगणना में लाहौर में मुस्लिम 47% थे।

• मुस्लिम लीगी नेताओं ने चतुरता और दूरदर्शिता का परिचय देते हुए लाहौर नगर निगम की सीमा में मुस्लिम बहुल निकटवर्ती कई गाँवों को शामिल कर दिया।

• इन गाँवों के शमिल होने पर लाहौर में मुस्लिमों का प्रतिशत 54 हो गया।

• कांग्रेस की ओर से भारत का पक्ष रखने का अधिकार नेहरू को दिया गया।

• नेहरू को खंडित भारत में तिरंगा फहराने की बहुत जल्दी थी इसलिए उन्होंने सीमा निर्धारण आयोग से ढंग से वार्ता ही नहीं की।

• भारत की ओर से यह कहा गया कि लाहौर की 85% जमीन-जायदाद के मालिक हिन्दू हैं इसलिए यह नगर भारत में रहना चाहिए।

• आयोग के अध्यक्ष ने कहा कि उन्हें वे नगर-जिले पाकिस्तान को देने हैं जहाँ मुस्लिम 51% या उससे अधिक हैं।

• केवल सात प्रतिशत मुस्लिमों ने कांग्रेस को वोट दी थी। लगभग 63 लाख मुस्लिम वोट कांग्रेस को मिली। ये विभाजन के विरोधी थे। इनके हिस्से की जमीन 23000 वर्ग मील बैठती है। ये भारत में ही रहना चाहते थे।

• गांधी-नेहरू ने मन में यह सोच लिया था कि खंडित भारत में मुस्लिमों को भी रखा जाएगा।

• यदि कांग्रेस की ओर से आयोग को यह कहा जाता कि पाकिस्तान को उन सात प्रतिशत मुस्लिमों के हिस्से की 23000 वर्ग मील भूमि नहीं दी जाए जिन्हें बंटवारे के बाद भी खंडित भारत में ही रहना है तो लाहौर निश्चित रूप से भारत को मिलता।

• यदि मौलाना आजाद के नेतृत्व में एक ज्ञापन इसी के पक्ष में दे दिया जाता तो भारत का पक्ष ज्यादा मजबूत हो जाता।

• हमारी सोच है कि यदि आयोग 23000 वर्गमील भूमि पाकिस्तान को कम देने के तर्क को स्वीकार कर लेता तो पश्चिमी पंजाब के लाहौर-स्यालकोट-ननकाना साहब और सिन्ध के थारपारकर और उमरकोट जिले भी भारत में ही रहते।

• खेद है कि नेहरू की जल्दबाजी और अदूरदर्शिता के कारण पंजाब का प्रसिद्ध नगर लाहौर भारत में नहीं रहा। इस नगर को भागवान राम के पुत्र लव ने बसाया था। यह आर्य समाज का गढ़ था। देश की दूसरी आर्य समाज महर्षि दयानन्द ने अपने हाथों से यहीं बनाई थी।

• कांग्रेस का बढ़-चढ़कर समर्थन करने वाले आर्य समाजी देखते रह गए और लाहौर पाकिस्तान को मिल गया।

• सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा 15 हनुमान रोड, नई दिल्ली-110001 के कर्मठ नेताओं से अनुरोध है कि वे लाहौर की उस आर्य समाज का जीर्णोद्धार कराने की कोशिश करें, जिसकी स्थापना महर्षि दयानन्द ने की थी और 2018 में अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन लाहौर में कराएँ।

❑❑

नरेन्द्र मोदी जी सुनो।

[पं. नन्दलाल निर्भय पत्रकार, भजनोपदेशक, आर्य सदन बहीन, जनपद पलवल (हरियाणा)]

देशभक्त, धर्मात्मा, चरित्रवान, विद्वान्।
जनसेवी, त्यागी, विनम्र, शीलवन्त इंसान।।
शीलवन्त इंसान, सत्यवादी, तपधारी।
वीर, साहसी, बली, मेहनती परोपकारी।।
करे सुजन की मदद, दण्ड दुष्टों को देता।
ऐसा नेता प्यार, सकल जग का पा लेता।।

नरेन्द्र मोदी जी सुनो! आप लगाकर ध्यान।
भारत के तुम बन गये, अब मंत्री-प्रधान।।
अब मंत्री-प्रधान, देश है दुखी हमारा।
अपमानित हर तरह, आज है भारत प्यारा।।
नेताओं ने जात-पात का, रोग बढ़ाया।
देशद्रोही भ्रष्ट जनों को गले लगाया।।

ऋषियों के इस देश में, गुण्डों का है जोर।
थानों के मालिक बने, जालिम, डाकू, चोर।।
जालिम, डाकू, चोर, मौज अब मार रहे हैं।
नाव देश की डुबा, बीच मझधार रहे हैं।।
अगर रहा यह हाल, देश यह मिट जाएगा।
हम सबको नासमझ, सकल जग बतलाएगा।।

हे नेता जी! आपका, नरेन्द्र मोदी नाम।
जैसा सुंदर नाम है, ऐसे करना काम।।
ऐसे करना काम, वेद-पथ को अपनाना।
राम, कृष्ण, चाणक्य, शिवाजी बन दिखलाना।।
सबके लिए समान, आप कानून बनाना।
क्षेत्रवाद का, वर्गवाद का, भेद मिटाना।।

वल्लभभाई पटेल को, मान आप आदर्श।
लाल बहादुर शास्त्री, बन करना उत्कर्ष।।
बन करना उत्कर्ष, देश की शान बढ़ाना।
बन कर वीर सुभाष, जगत में नाम कमाना।।
भारतवासी साथ, आपके हैं, प्रिय नेता।
निर्भय आगे बढ़ो, बहादुर वीर विजेता।।

अकबर (1542-1605) महान नहीं, क्रूरतम अत्याचारी था

(कृष्ण चन्द्र गर्ग, पंचकूला, दूर. 0172-4010679)

तैमूरलंग और चंगेजखां - दो क्रूरतम अत्याचारी हुए हैं। अकबर की रगों में इन्हीं का खून था- पिता की तरफ से तैमूरलंग का और माता की तरफ से चंगेजखां का।

अकबर का शरीर - (विंसैंट स्मिथ के अनुसार) - ऊँचाई लगभग 5 फुट 7 इंच, चौड़ी छाती, पतली कमर और लम्बे बाजू। उसके पैर अन्दर की ओर झुके हुए थे। चलते समय वह अपने बाएं पैर को कुछ घसीटता हुआ चलता था, मानो लंगड़ा हो। उसका सिर दाएं कंधे की ओर कुछ झुका हुआ था। नाक कुछ छोटी थी, बीच की हड्डी कुछ उभरी हुई थी। नथने ऐसे लगते थे, मानो क्रोध में फूले हों। मटर के आधे दाने के आकार का एक मस्सा उसके ऊपरी होंठ को नथने से जोड़ता था। उसका रंग श्यामल था।

पादरी एंथनी मांसरेत अकबर के दरबार में गए थे। वे लिखते हैं - अकबर के कन्धे चौड़े तथा पैर कुछ घुमावदार हैं। रंग कुछ हल्का भूरा है। वह अपना सिर अधिकतर दाहिने कंधे की ओर झुकाए रखता है। माथा चौड़ा है, आँखें चमकती हैं। उसकी पलकों के बाल बहुत लम्बे हैं, नाक छोटी और सीधी है, नथने काफी फूले हैं जैसे उपहास की मुद्रा में हो। बाएं नथने तथा होंठ के बीच एक काला तिल है, दाढ़ी सफाचट है, परन्तु मूँछ रखता है। उसके बाल लम्बे हैं। टोपी वह नहीं लगाता, अपनी पगड़ी में ही सारे बाल घुसेड़ लेता है। बाएं पैर से कुछ लंगड़ाता है।

अकबर पूरी तरह अनपढ़ था तथा शराब पीने का व्यसनी था। वह अत्यंत कामी था। उसके हरम में बहुत सी स्त्रियाँ थीं। हारे हुए राजाओं के घरों से मनपसंद महिलाओं को अकबर अपने हरम में भरती कर लेता था।

आगरा के लाल किले में भारत सरकार के पुरातत्व विभाग का नीला बोर्ड लगा हुआ है। उस पर लिखा है कि यहां अकबर पाँच हजार औरतें रखता था। (आचार्य नरेश)

अकबर की आँख उसके संरक्षक बैरम खां की पत्नी पर लग गई थी। उसने बैरम खां की नृशंस हत्या करवाने के बाद उसकी पत्नी से शादी कर ली थी।

मीना बाजार नाम की एक प्रथा थी जिसके अनुसार नए साल के दिन सब घरों की महिलाओं को अकबर के सामने से गुजरना होता था। ताकि वह अपनी रुचि के अनुसार उनमें से किसी को चुन सके।

पानीपत के युद्ध के पश्चात् 6 नवम्बर 1556 के दिन जब अकबर के सामने घायल तथा अर्धचेतन अवस्था में हेमू (हेमचन्द्र) को लाया गया तब अकबर ने अपनी टेढ़ी तलवार से उसकी गरदन पर प्रहार किया। अकबर उस समय 14 वर्ष का था। (विंसैंट स्मिथ)

चित्तौड़गढ़ के किले को जीतने के बाद अकबर ने वहा मौजूद सेना तथा अन्य लोगों का कत्लेआम करवाया। विंसैंट स्मिथ के अनुसार इस कत्लेआम में 30,000 लोग मारे गए थे। कर्नल टाड का कहना है कि चित्तौड़ को जीतने के बाद अकबर ने बचे हुए सभी स्मारकों को तोड़ दिया था।

अकबर नामा - अबुल फजल - जिहादी अकबर - फतहनामा चित्तौड़ 1568 में लिखा है कि उस युद्ध को देखने हेतु बिना हथियार आसपास खड़े 40,000 हिन्दू किसानों को मौत के घाट उतार दिया गया। (आचार्य नरेश)

सन् 1572 के नवम्बर मास में जब अकबर अहमदाबाद के शासक मुजफ्फरशाह को हराकर बन्दी बना चुका था, तब उसने आज्ञा दी थी कि विरोधियों

को हाथियों के पैरों तले रौंदकर मार डाला जाए।

मसूद हुसैन मिर्जा अकबर का निकट सम्बन्धी था। उसने अकबर के विरुद्ध बगावत की और वह पकड़ा गया। उसकी आँखों को सुई से सी दिया गया और उसके 300 साथियों को तड़पा-तड़पा कर मारा गया।

थानेसर के पवित्र कुण्ड पर इकट्ठे हुए साधु 'कुरु' और 'पुरी' दो भागों में बंटे थे। अकबर अपने सेवकों के साथ वहां उपस्थित था। पुरी वालों ने बादशाह से शिकायत की कि कुरु वालों ने उनका बैठने का स्थान अवैध रूप से छीन लिया है। इसलिए वे जनता के दान से वंचित रह गए हैं। अकबर की ओर से उन्हें कहा गया कि वे आपस में युद्ध करके निर्णय कर लें। दोनों ओर के लोगों को शस्त्र देकर लड़ाया गया। जो पलड़ा हल्का पड़ता बादशाह अपने लोगों को उनकी सहायता करने को कहते। अंत में दोनों वर्गों के लोग अकबर के सैनिकों द्वारा पूरी तरह समाप्त कर दिये गये। (विंसैट स्मिथ)

हल्दी घाटी के युद्ध में राणा प्रताप और अकबर - दोनों की सेनाओं में राजपूत बहुतायत में थे। जब दोनों ओर से घमासान युद्ध हो रहा था, तब अकबर की ओर से बदायूनी ने अपने सेनानायक से पूछा कि वह कहां गोली चलाए क्योंकि यह पहचानना कठिन है कि कौन सा राजपूत हमारी ओर है और कौन सा राणा प्रताप की ओर है। बदायूनी का कहना है कि उसे उत्तर मिला कि इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। जो भी राजपूत मरेगा इससे इस्लाम का ही लाभ होगा।

सन् 1603 की घटना है। अकबर दोपहर के विश्राम के बाद कुछ जल्दी उठ खड़ा हुआ। उसे कोई सेवक न दिखा, परन्तु एक मशालची सोया मिला। अकबर ने क्रोध में आकर उस मशालची को मीनार से नीचे जमीन पर पटकने का आदेश दे दिया।

अकबर अपने आप को पैगम्बर की भान्ति पेश करता था। वह हिन्दुओं को अपने पैरों की धोबन पिलाता था। हिन्दुओं को छोड़ और लोग आते तो वह उन्हें पीने नहीं देता था, बल्कि झिड़क देता था। (स्मिथ और बदायूनी)

जिजिया - अकबर ने आम हिन्दुओं पर जिजिया कर लगा रखा था। जिजिया वह कर था जो मुस्लिम राज में गैर-मुस्लिमों को जीने का अधिकार लेने के लिए देना पड़ता था। रणथम्भोर की सन्धि में बूंदी के शासक को जिजिया कर से विशेष छूट दी गई थी।

स्मिथ के अनुसार - अकबर अपने आप को सारी प्रजा का उत्तराधिकारी के रूप में समझता था तथा मृतक की सारी सम्पत्ति को ले लेता था। फिर बादशाह की कृपा से ही परिवार वाले फिर से काम धंधा शुरु कर पाते थे।

डाक्टर आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव अपनी पुस्तक 'अकबर महान' में लिखते हैं - शर्फुद्दीन अकबर के सेनापतियों में से एक था। उसने आमेर (प्राचीन जयपुर) के तत्कालीन नरेश राजा भारमल के विरुद्ध अनेक बार आक्रमण किया। बहुत कुछ छीन-झपट लेने के अतिरिक्त शर्फुद्दीन ने भारमल के तीन भतीजे भी पकड़कर बंधक बना लिए थे और उन्हें मार देने की धमकी दे रखी थी। इनके नाम थे- जगन्नाथ, राजसिंह और खंगर। भारमल के सम्मुख सर्वनाश उपस्थित था। इसलिए अत्यन्त असहाय अवस्था में उसने अकबर द्वारा मध्यस्थता तथा उसके साथ समझौता चाहा। भारमल के तीनों भतीजों की मुक्ति के लिए अकबर ने एक निर्दोष, असहाय राजकुमारी को उसके सम्मुख समर्पण की शर्त लगा दी थी। सांभर नामक स्थान पर राजकुमारी अकबर को सौंप दी गई। तभी तीनों राजकुमारों को छोड़ा। इसके साथ-साथ बड़ी धन राशि भी देनी पड़ी थी।

ऐसे ही दूसरे राजपूत राजाओं की कन्याओं को अकबर को सौंपा गया था। जैसलमेर के राजा हरराय ने तथा डूंगरपुर के राजा आसकरण ने अपनी बेटियाँ अकबर के हरम में भेजी थीं। बीकानेर के राजा कल्याणमल को अपने भाई काहन की बेटी अकबर के हरम में भेजनी पड़ी क्योंकि उसकी अपनी बेटी विवाह

योग्य नहीं थी। कांगड़ा उर्फ नगरकोट के शासक विधिचन्द ने अकबर के हरम के लिए डोला भेजने से मना कर दिया अकबर के सैनिकों ने ज्वालामुखी देवी के मन्दिर में 200 काली गाएँ काटकर उसके खून से मन्दिर के द्वारों व दीवारों को लथपथ कर दिया था। (राजेश आट्टा)

अकबर के नवरत्न - टोडरमल जनता से धन वसूलने की उस प्रणाली के निर्माण में लगा था जिसमें उनसे धन वसूलने के लिए उनको कोड़े लगाए जाते थे, अन्यथा उन्हें अपनी पत्नी और बच्चे बेचने पड़ते थे। अबुल फजल बड़ा चापलूस था जो शहजादा सलीम द्वारा मरवा डाला गया था। फैजी एक मामूली सा कवि था जो अकाल मृत्यु को प्राप्त हुआ था। बीरबल युद्ध में मारा गया था। उसके नाम से प्रसिद्ध बुद्धि-चातुर्य, हास्य-व्यंग्य एवं हाजिर-जवाबी की कथाएं वास्तव में किसी और का कला कौशल था। वित्तमंत्री शाह मंसूर का वध तो स्वयं अबुल फजल ने अकबर के आदेश पर ही किया था। राजा भगवान दास ने अपनी स्त्रियों, पुत्रों और भाई भतीजों समेत सबको अकबर की सेवा में लगा रखा था। फिर भी उसके साथ बादशाह का व्यवहार बहुत निन्दनीय था। इस बात से दुःखी होकर उसने अपने पेट में अपना ही छुरा घोंप लिया था। शराब के नशे में मस्त अकबर ने एक बार मानसिंह का गला दबा दिया था। अकबर के दरबार के चित्रकार दसवन्त ने अपनी हत्या छुरा घोंपकर कर ली थी।

मुगल दरबारों में स्थिति इतनी असह्य थी कि अपने जीवन, सम्मान, महिलाओं, घर की पवित्रता तथा धार्मिक मान्यताओं के अपमान से दुखी हिन्दू लोग निराशा, पागलपन और मृत्यु को प्राप्त होते थे। अपना सब कुछ अकबर की सेवा में लगाने वाला टोडरमल भी स्थिति से परेशान होकर त्यागपत्र देकर बनारस चला गया था। ❑❑

पृष्ठ 14 का शेष

उन्होंने त्याग किया। इनको कितनी सफलता मिली, यह एक पृथक प्रश्न है परन्तु यह निश्चित है कि उनके त्याग व उनकी विस्तारता ने ही उनको यश तथा प्रसिद्धि दिलाई तथा लोक कल्याण हुआ। राम, बुद्ध व दयानंद घर न छोड़ते तो दशरथ व कौशल्या, शुद्धोधन व मायादेवी तथा कर्षन जी व अमृत बाई संसार में अपरिचित ही रहते। लक्ष्मण यदि राम के साथ वन में न जाते तो अपने ही भाई शत्रुघ्न की तरह रामायण का एक सामान्य पात्र ही कहलाते। उर्मिला यदि लक्ष्मण के त्याग में बाधा बनतीं तो कैकेयी की तरह वे भी रामायण की एक दुष्टा पात्र ही कहलातीं। उर्मिला और लक्ष्मण के त्याग व समर्पण ने उन दोनों को संसार में श्रद्धास्पद बनाया है।

जशोदाबेन ने लगभग 45-50 वर्षों तक अपना जीवन एक शिक्षिका के रूप में पूर्ण ब्रह्मचारिणी रहकर सादगी व शालीनता से जिया है। यह अवधि उर्मिला की पति से वियोग की अवधि से लगभग साढ़े तीन गुणा अधिक है। इस अवधि में उसने कुछ माँगा नहीं, न ही किसी से अपने पति की तनिक भी शिकायत की है। फिर विपक्षियों को नरेन्द्र से क्यों शिकायत थी? वास्तव में इनको न तो जशोदाबेन से सहानुभूति है तथा न ही अपने देश से लगाव था। यह जो भी है, वह नरेन्द्र मोदी को जनता की नज़र में गिराकर वोट प्राप्त करने का प्रयास था। यदि इन्हें मातृ-शक्ति के सम्मान करने की तड़प थी, तो इन्हें राम, दयानन्द एवं शंकराचार्य की निन्दा करनी चाहिए तथा यदि विपक्षियों को पत्नियों के अधिकारों की रक्षा करने की चिन्ता थी तो उन्हें बुद्ध, रामतीर्थ, लक्ष्मण तथा समर्थ गुरु रामदास की तरफ अंगुलि पहले उठानी चाहिए थी परन्तु ऐसा उन्होंने इसलिए नहीं किया क्योंकि इन महापुरुषों की निन्दा करने से आज के वोटरों के वोट इन्हें नहीं मिल सकते थे। यह सारा वोटों का खेल था।

❑❑

माता पिता की सम्मान के साथ सेवा करना प्रत्येक सन्तान का कर्तव्य

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून)

मनुष्य की जीवन यात्रा का आरम्भ जन्म से होता है और समाप्ति मृत्यु पर होती है। जन्म के समय वह प्रायः पूर्ण रूप से अज्ञानी होता है। मात्र उसके पास स्वाभाविक ज्ञान होता है और पूर्व जन्म का प्रारब्ध व संस्कार। पूर्व जन्म के संस्कारों से उसकी प्रवृति बनती है जिसे माता-पिता व आचार्य मिलकर अभीष्ट उद्देश्य या लक्ष्य की ओर प्रवृत कर उसे सिद्ध करने में अहम् भूमिका निभाते हैं। प्रवृति को बदला जा सकता है यदि हमें अपने से अधिक ज्ञान, संस्कार व आचारवान्, अनुभवी व ज्ञानी लोग मिल जायें और वह हमें समय-समय पर या निरन्तर दिशानिर्देश करते रहें। हमारे स्वयं के अन्दर भी जानने व सत्य को ग्रहण करने का स्वभाव, प्रवृति व रूचि होनी चाहिये। यदि ऐसा नहीं होगा तो फिर हमारे जीवन की भावी दिशा जीवन के उद्देश्य को पूरा करने में सफल नहीं होगी। संसार में हमें जीवन का लक्ष्य निर्धारित करना है और उसकी प्राप्ति के लिए योग्य आचार्य या निर्देशक-गाइड को नियुक्त कर उससे निर्देश व दिशा प्राप्त कर उस पर चिन्तन कर सावधानी पूर्वक चलना है और समय-समय पर उस पर पूरा ध्यान व विचार करते हुए उसे जहां भी परिवर्तन व संशोधन अपेक्षित हों, करना होता है। हमारे जो माता-पिता व आचार्य हैं, वे कौन हैं? ये वो लोग हैं जिन्होंने अपने जीवन में आचार्यों, अनुभवी व ज्ञानियों तथा बड़े-बड़े ज्ञानी बुजुर्गों की संगति व निकटता प्राप्त की होती है व अनेक विषयों के ग्रन्थों को पढ़ा होता है। उन्हें जीवन के बारे में जो जानकारियां होती हैं, वह कम आयु के लोगों में नहीं होती। उनका सान्निध्य हमारे लिए वरदान होता है। जब यदा-कदा हम उनके सम्पर्क में आते हैं तो हमारा कार्य उनसे संवाद कर उनकी सेवा करना होना चाहिये। सेवा में उनकी आवश्यकता की वस्तुयें यथा भोजन, वस्त्र, मार्ग व्यय या यात्रा आदि कुछ धन व द्रव्य आदि देने होते हैं। इससे प्रसन्न होकर वह सेवा करने वालों को आशीर्वाद के साथ अपने ज्ञान व अनुभव से लाभ प्रदान करते हैं। इसे संगतिकरण कहा जाता है। प्राचीन काल में हमारे यहां इस संगतिकरण को यज्ञ कहा जाता था इसका कारण था कि यज्ञ में बड़े ज्ञानी व अनुभवियों को आमंत्रित कर उनका सत्कार किया जाता था। वह अपना आशीर्वाद प्रवचन व उद्बोधन के रूप में देते थे जिससे यजमान व सभी यज्ञ में सम्मिलित लोगों को लाभ होता था। यहां हम एक उदाहरण लेते हैं। **मान लीजिए कि एक जगह अग्निहोत्र यज्ञ हो रहा है जिसमें एक चिकित्सक - डाक्टर या वैद्य, एक भवन निर्माता इंजीनियर, एक आध्यात्मिक विद्वान तथा एक आचार्य - अध्यापक उपस्थित हैं।** सबको बीस-बीस मिनट का समय प्रवचन या उद्बोधन के लिए दिया जाता है।

पहले चिकित्सक महाशय प्रवचन करते हैं। वह बताते हैं कि स्वास्थ्य का आधार भोजन, निद्रा व संयमपूर्ण जीवन होता है। इन तीनों का जीवन में संतुलन होना चाहिये। इसके विपरीत भूख से अधिक भोजन, अल्प व अधिक निद्रा तथा संयम अर्थात् इन्द्रियों को वश में रखकर उसे अनावश्यक विषयों में प्रवृत होने से रोक कर जीवन व्यतीत करना होता है। वह बताते हैं कि भोजन सदैव शाकाहारी ही होना चाहिये। यदि सामिश भोजन करेंगे तो उससे रोगों के लग जाने और समय से पूर्व मृत्यु आ जाने अथवा अधिकांश समय रोगों की चिकित्सा में व्यतीत होगा। सामिष भोजन तामसिक व राजसिक होता है। **जैसा खाये अन्न वैसा बनेगा मन,** अर्थात् भोजन के तामसिक व राजसिक होने से मन में तामसिक व राजसिक गुणों का प्रभाव अधिक होगा व सत्व गुण का प्रभाव कम होगा। रोगी व्यक्ति की कार्य करने की क्षमता भी कम होती है जिससे अर्थोपार्जन व

सुख भोगने में भी बाधा होती है। सभी लोगों को स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना चाहिये। फिर वह कहते हैं कि यदि किसी को स्वास्थ्य सम्बन्धी कोई कष्ट है तो वह बताये जिसका निवारण वह करेंगे। इस प्रकार से संगतिकरण से वहां उपस्थित लोगों को स्वास्थ्य संबंधी जानकारियों की प्राप्ति से लाभ होता है। हमने यहां मात्र संकेत किया है। उनके व्याख्यान में स्वास्थ्य सम्बन्धी विस्तृत बातें हो सकती हैं। वर्तमान समय में मधुमेह, कैंसर, रक्तचाप व हृदय रोग, पाचन तन्त्र से सम्बन्धित रोग, शारीरिक क्षमताओं को बढ़ाने आदि के बारे में भी वह लोगों को विस्तार से बता सकते हैं। इसी प्रकार से स्वास्थ्य से सम्बन्धित अनेकानेक बातें वह बता सकते हैं या उनसे पूछी जा सकती हैं। इसके बाद भवन निर्माण से सम्बन्धित इंजीनियर महोदय अपने विचार व्यक्त करते हैं। वह बताते हैं कि भवन ऐसा हो जो छोटा भले ही हो परन्तु उसमें वायु के आने-जाने के लिए समुचित दरवाजे, खिड़कियां व रोशन दान होने चाहिये। भवन ऐसे स्थान पर हों जहां प्रदुषण न हो अन्यथा वहां रहने वाले लोग रोगों का शिकार हो सकते हैं। यदि वहां प्रदुषण हो तो वहां के लोगों को चाहिये कि वह संगठित होकर प्रशासन से उस प्रदुषण के निवारण के लिए अनुरोध व उसकी पूर्ति के हर सम्भव प्रयास करें। भवन में शुद्ध जल की सुविधा होनी चाहिये। भोजन के लिए व प्यास लगने पर पीने के जल के लिए घर में जलशोधक यन्त्र प्योरिफायर लगा हो, तो अच्छा रहता है। मनुष्यों को अधिकांश रोग वायु व जल के प्रदुषण से ही प्रायः हुआ करते हैं आजकल भोजन के लिए जिन वनस्पतियों व अन्न, साग-सब्जी का हम प्रयोग करते हैं उसमें रसायनिक व कृत्रिम खाद का प्रयोग किया जाता है। ऐसा अन्न व भोज्य पदार्थ स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक होते हैं, इनसे बचना चाहिये। भवन में सूर्य के प्रकाश के प्रवेश का भी अधिक से अधिक प्रावधान होना चाहिये। सूर्य का प्रकाश रोग कृमिनाशक होता है। भवन के मध्य में यदि एक यज्ञशाला बनी हो जिसमें प्रातः व सायं यज्ञ-अग्निहोत्र होता है, तो यह परिवारजनों के आध्यात्मिक, भौतिक तथा स्वास्थ्य-लाभ के लिए अतीव महत्वपूर्ण होता है। इससे घर की दुर्गन्धयुक्त प्रदुषित वायु हल्की होकर घर से बाहर निकल जाती है और बाहर के वातावरण की शुद्ध वायु का घर में प्रवेश होता है। यज्ञ की अग्नि में डाले गये घृत आदि पदार्थ सूक्ष्म होकर वायुमण्डल व आकाश में फैल जाते हैं। यज्ञ से निर्मित शुद्ध वायु व वायु में विद्यमान स्वास्थ्यवर्धक एवं रोगनिवारक गैसें प्राण व श्वांसों के द्वारा हमारे शरीर के भीतर प्रवेश करती हैं जिससे स्वास्थ्य को अधिक लाभ होने के साथ मन, आत्मा तथा बुद्धि को भी ईश्वर की ओर से प्रसन्नता व सुख का लाभ प्राप्त होता है। भवन में फर्श कैसे हों जिससे फिसलकर होने वाली दुर्घटनाओं से बचा जा सके, इसकी भी चर्चा होती है व उपाय बताये जाते हैं। सस्ते निवास कैसे बन सकते हैं आदि, आधुनिक परिप्रेक्ष्य की अनेक प्रकार की जानकारियां हम भवन इंजीनियर से प्राप्त कर सकते हैं।

अब आध्यात्मिक विद्वान अपना व्याख्यान आरम्भ करते हुए बताते हैं कि हम आंखों से अपने जिस ब्रह्माण्ड को देखते हैं, वह अनन्त परिमाण वाला है। इस ब्रह्माण्ड में अनन्त संख्या में सूर्य, चन्द्र, पृथिवियां व लोक-लोकान्तर हैं। सूर्य का प्रकाश एक सैकण्ड में 1,86,000 मील की दूरी तय करता है। ब्रह्माण्ड में ऐसे कुछ सूर्य हैं जिनका प्रकाश हमारी पृथिवी पर अभी तक नहीं पहुंचा है। उन सूर्यों का प्रकाश इस ब्रह्माण्ड को बने 1,96,08,53,114 वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी हमारे सौर्य मण्डल तक अभी नहीं आया है जिसका अर्थ है कि वह सूर्य हमसे 1,96,08,53,114 × 1,86,000 × 60 × 60 × 24 × 365 कि.मी. से भी अधिक दूरी पर है। इससे आप इस सृष्टि की विशालता को जान सकते हैं। **जब यह ब्रह्माण्ड इतना विशाल है तो इसको बनाने वाला ईश्वर कितना विशाल होगा।** उसी सत्ता व शक्ति ने हमारे शरीर को भी बनाया है और उसी के द्वारा हमारे प्रारब्ध, कर्मों, आचरणों आदि के अनुसार हमें सुख व दुःख प्राप्त हो रहा है। अतः प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह उस सृष्टिकर्ता ईश्वर के वास्तविक

स्वरूप को जाने। वह ईश्वर सर्वान्तरयामी, अजर, अमर, अभय, नित्य व पवित्र है। उस ईश्वर का अवतार होना सम्भव नहीं है। उसकी उपासना ध्यान व चिन्तन से ही हो सकती है। मूर्ति पूजा व अन्य किसी प्रकार से जैसा कि मत-मतान्तरों की पूजा-अर्चनायें आदि हैं, उसका प्राप्त होना असम्भव है। उसको जानने व प्राप्त करने के लिए सत्कर्मों व पवित्र कर्मों, अहिंसा व सत्य आचरण, ईश्वरोपासना, योगाभ्यास, अग्निहोत्र यज्ञ, दान, सेवा, पुण्य कर्म आदि का करना आवश्यक है। हमारा स्वरूप क्या व कैसा है? वह महात्मा व आध्यात्मिक गुरू बताते हैं कि जीवात्मा सत्य, चेतन, अल्पज्ञ, अल्पशक्ति, कर्म करने में स्वतन्त्र व फल भोगने में परतन्त्र है। हम सबका जीवात्मा अजन्मा, अनादि, अमर, एक देशी, कर्म-फल के बन्धनों में बन्धा हुआ है। अनादि काल से हम सबका जीवात्मा संसार की मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि सभी जीव-योनियों में अनेको-अनेकों बार जन्म धारण कर चुका है और अनेकों बार मोक्ष में आता-जाता रहा है। ईश्वरोपासना, योगाभ्यास आदि कर्तव्यों को करके व उनके सफल होने पर ईश्वर का साक्षत्कार कर यह जीवात्मा मनुष्य योनि में मोक्ष का अधिकारी बनता है। इसी प्रकार से प्रकृति के स्वरूप का वर्णन करते हुए वह बताते हैं कि प्रकृति प्रलयावस्था में कारण रूप में, सत्व, रज व तम गुणों की साम्यावस्था होती है। सत्व, रज व तम प्रकृति के तीन गुणों व सूक्ष्म कणों की असृष्ट अवस्था है। सृष्टि के आरम्भ में सत्व, रज व तम गुण प्रधान इस प्रकृति में ईश्वर की प्रेरणा व सामर्थ्य से विकृति होना आरम्भ होकर सूर्य, चन्द्र, पृथिवी व लोक लोकान्तर आदि बनते हैं। हमारे व सभी प्राणियों के शरीर इस प्रकृति से ही बने हैं। यह प्रकृति स्वरूप व स्वभाव से जड़ है। जड़ का अर्थ अचेतन व निर्जीव होना है। अचेतन होने के कारण इसे सुख-दुख की अनुभूति नहीं होती। सुख व दुख की अनुभूति चेतन तत्व वा जीवात्मा को ही होती है जिसमें उसके पाप-पुण्य कर्म कारण होते हैं। मनुष्य जन्म का उद्देश्य सत्कर्मों के द्वारा धर्म, अर्थ काम व मोक्ष को प्राप्त करना है, ऐसा धर्म गुरु व महात्मा जी बताते हैं। इसके बाद आचार्य व अध्यापक अपना प्रवचन करते हुए शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हैं। वह कहते हैं कि अशिक्षित व्यक्ति पशु के समान होता है। सभी मनुष्यों को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये, संस्कृत-आर्ष व्याकरण व वेदादि साहित्य को पढ़ने के साथ हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषाओं का भी ज्ञान प्राप्त करके पश्चात गणित, विज्ञान, समाज शास्त्र, धर्मशास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र, प्रबन्धन, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा व इलेक्ट्रॉनिक्स आदि अन्य सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान व विद्याओं का अध्ययन करना चाहिये। वेद-विद्या को प्राप्त कर तदनुरूप ज्ञानपूर्वक पुण्य कर्म करने से मोक्ष की प्राप्ति भी होती है। आयु के 50वें वर्ष तक गृहस्थ जीवन में रहते हुए व अपने ज्ञान व विद्या से धनोपार्जन करते हुए वैदिक जीवन पद्धति के अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहिये। इस प्रकार की बातें हमें यज्ञ आदि व अन्य आयोजनों के अवसर पर विद्वानों से सुनने को मिलती हैं। **यह सब बातें बताने वाले वृद्ध व बुजुर्ग सज्जन होते हैं जिन्होंने अपने जीवन में व्यापक अध्ययन कर अनुभव प्राप्त किया हुआ होता है जिससे हमारा जीवन सफल बनने से कृतकार्य होता है।**

अब हम परिवार के माता-पिता व दादा-दादी के विषय में विचार करते हैं। प्रायः बुजुर्ग शब्द इन्हीं के लिए प्रयोग मे लाया जाता है। माता-पिता ने अपने युवावस्था में पुत्र व पुत्रियों को जन्म दिया व उनका पालन-पोषण किया। जन्म से पूर्व मां को लगभग हिन्दी के पूरे 10 महीनों तक बहुत सावधानियां रखनी पड़ती हैं। माता की एक छोटी सी असावधानी से बच्चे के जीवन को खतरा होता है। इस कारण इस अवधि में माता को कई प्रकार के शारीरिक व मानसिक कष्ट भी उठाने पड़ते हैं। ऐसा भोजन लेना होता है जिससे गर्भ में बच्चे का विकास व निर्माण भलीभांति हो। बच्चे के जन्म के समय तो माता को असह्य प्रसव-पीड़ा होती है जिसका मुख्य कारण सन्तान का जन्म या वह सन्तान ही होती है। जन्म के समय माता की जान को खतरा भी होता है। कुछ माताओं की तो मृत्यु तक हो जाती है और इससे पिता का जीवन कष्टमय हो जाता है।

जन्म के आरम्भ के कुछ वष्रो में माता को शिशु के पालन में अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। कई रात्रियां बिना सोये जागकर बितानी पड़ती हैं। शैशव काल व बाद के जीवन में सन्तान को कुछ रोगों के होने पर माता-पिता उनकी चिकित्सा कराते हैं और इसमें धन व्यय के अतिरिक्त मानसिक व शारीरिक कष्ट उठाते हैं। माता-पिता ने सन्तानों को शिक्षित किया जिससे भावी जीवन में वह हर प्रकार से सुखी जीवन व्यतीत कर सके। बच्चे को स्कूल ले जाना, वापिस लाना, समय पर भोजन कराना, यह ऐसे कार्य हैं, जो पैसे लेकर कोई नौकर भी नहीं कर सकता। सन्तान के विवाह योग्य होने पर उनके विवाह आदि कराते हैं। सन्तानों को अपना घर बनवा कर उसमें रखते हैं व उन्हें दूर व पास के अच्छे-अच्छे स्थानों पर घुमाने ले जाते हैं। जहां वह स्वयं रहे, वहीं अपनी सन्तानों को भी रखते हैं, जो उनके प्यार व त्याग का प्रतीक है। बच्चे का जब जन्म होता है तो सुरक्षा की दृष्टि से प्राइवेट नर्सिंग होम या निजी हास्पीटलों आदि में प्रसव कराया जाता है। इन स्थानों का बिल भी हजारों रूपयों या कुछ प्रसवों में 1 लाख रूपये तक भी आ जाता है। माता पिता बच्चे को लेकर कोई रिस्क लेना नहीं चाहते। माता-पिता के मरने के बाद उनकी सारी सम्पत्ति सन्तानों को ही मिलती है। यदि माता-पिता की इन सब सेवाओं का आर्थिक मूल्यांकन करें व इन पर ब्याज आदि जोड़ें, तो हम समझते हैं कि कोई भी सन्तान माता-पिता द्वारा उन पर किए गये व्यय को लौटा नहीं सकती। यह तो भौतिक व आर्थिक स्थिति है। जिस भावना, प्रेम व स्नेह से व एक मन होकर उन्होंने पालन किया, उसकी तो गणना सम्भव ही नहीं है। प्रायः 60 वर्ष तक तो माता-पिता कार्य करते ही हैं। अनेकों के पास जमा पूंजी भी होती है और कई निर्धन भी हो सकते हैं। अनेकों को पेंशन मिलती है। माता-पिता नहीं चाहते कि उन्हें अपनी सन्तानों से सेवा कराने की आवश्यकता पड़े, पर आयु बढ़ने के साथ स्वास्थ्य की समस्यायें बढ़ने लगती हैं। रोग आ घेरते हैं। पति-पत्नी में किसी एक की मृत्यु भी हो गई होती है। ऐसे अवसरों व समय में उन्हें अपेक्षा होती है कि उनकी सन्तानें अर्थात् पुत्र, पुत्र-वधु व पोते-पोतियां उनकी सेवा करें। **उनको औषधियां मिले, चिकित्सकीय परामर्श मिलें, वस्त्र, सेवा, भोजन व आश्रय मिले तथा सभी से अच्छा व्यवहार मिले।** माता-पिता इसके अधिकारी होते ही हैं। पहला कारण तो उन्होंने बच्चों को जन्म दिया, दूसरा पालन पोषण किया, शिक्षित किया, आश्रय दिया, अच्छे भोजन का प्रबन्ध किया व दिया व आवश्यकता पड़ने पर उनकी चिकित्सा कराई और उन्हें स्वास्थ्य हानि व मृत्यु आदि से बचाया, नाना प्रकार से उनके जीवन निर्वाह में सहयोग दिया और बदले में कभी कुछ नहीं चाहा व मांगा। ऐसे माता-पिता यदि आयु वृद्धि के कारण अशक्त, निराश्रय या परावलम्बी हो गये हैं तो सन्तानों का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह अपने बड़ों की सेवा सुश्रुषा करें और उन्हें किसी प्रकार का शारीरिक व मानसिक कष्ट न होने दें। यदि वह अपने सुख-सुविधाओं के कारण माता-पिता व बड़े बुजुर्गों की उपेक्षा करते हैं, सेवा सुश्रुषा नहीं करते तो ऐसी सन्तानें सुपात्र न होकर, कृतघ्न, विश्वासघाती व अपराधी होती हैं। ऐसे लोगों के लिए दण्ड का प्रावधान होना चाहिये परन्तु हम अनुभव करते हैं कि इस विषय पर जो कानून व दण्ड व्यवस्था है, वह अपर्याप्त है। पहली मुख्य बात तो यह है कि सन्तानों को माता-पिता की हर सम्भव सेवा व सहायता करनी चाहिये, यदि फिर भी ऐसा नहीं होता है तो ऐसे लोगों के लिए सरकार की ओर से वृद्ध-आश्रम Old Age Home बनायें जाने चाहिये जहां निर्धन श्रेणी के लोगों को आश्रय देने के साथ, उनके भोजन व चिकित्सा का प्रबन्ध किया जाये तथा असहाय लोगों की नर्सिंग आदि व हर प्रकार से सहायता की जाये। समाज के लोगों को भी माता-पिता व बुजुर्गों की सेवा न करने वालों का सामाजिक बहिष्कार करने के साथ उन्हें राजकीय व्यवस्था से कानूनी व वैधानिक दण्ड दिलाने का प्रयास करना चाहिये। इसके साथ सामाजिक संस्थाओं को इसके लिए सामाजिक आन्दोलन चलाना चाहिये जिससे वृद्धावस्था में किसी बुजुर्ग को कठिनाई या पीड़ा न हो।

बुजुर्गों की सेवा से सम्बन्धित हमने अपने मित्रों,

परिचितों व उपदेशकों से कुछ घटनायें सुनी हैं जो उनके प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित हैं। एक घटना में किसी सम्पन्न पुत्र ने अपने पिता को ज्वालापुर हरिद्वार के आर्य वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रखा हुआ था। वह बीमार हो गये और आश्रम वासियों को लगा कि उनका अन्तिम समय निकट है। पुत्र को सूचना दी गई, मुम्बई से पुत्र आया, कुछ घंटे रूका और आश्रम के अधिकारियों से बोला कि उसके पास और अधिक समय नहीं है, उसे जाना होगा। उसने यह भी कहा कि आश्रमवासी पिताजी का इलाज करायें, उस पर जो व्यय होगा, वह दे देगा। यदि पिता की मृत्यु हो जाये तो उसे न बताया जाये क्योंकि वह आ नही सकेगा। एक अन्य घटना देहरादून की है। आर्य समाज व शिक्षा से जुड़े देश भर में प्रसिद्ध एक विद्वान की जो डॉ. सम्पूर्णानन्द, मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश से परिचित थे, उनके गुरू भी रहे, वृद्धावस्था में एक पैर की हड्डी टूट गई। उन्हें कुछ लोगों ने एक नर्सिंग होम में भर्ती करा दिया। नर्सिंग होम के निकट रह रहे आर्यसमाज के एक सुहृद व्यक्ति ने उनकी सेवा की। आचार्य जी के कहने पर दिल्ली स्थित उनके पुत्र को फोन कर सूचना दी गई। पुत्र अपनी बड़ी कार में अकेला आया, पत्नी व पोते-पोतियां नहीं आईं। उसने प्रातः पड़ोसी आर्य महाशय के यहां स्नान आदि कर ब्रेकफास्ट आदि लिया और उनसे कहा कि उसे अब जाना है और चला गया। पिता वहीं अस्पताल में रह गये। इन बुजुर्ग आचार्यजी के तीन पुत्र थे, तीनों बाहर रहते थे। इन आचार्यजी ने देहरादून की अल्पायु की एक विधवा अशिक्षित महिला को अपनी पुत्री बनाकर पढ़ाया था। वह वहां के एक स्नातकोत्तर महाविद्यालय में संस्कृत की विभागाध्यक्ष रहीं। वसीयत लिखते समय भी इनके साथ इन्हीं के निवास पर साथ में रहने वाली बहू पति के साथ नाराज होकर चली गयी क्योंकि आचार्यजी तीनों पुत्रों को सम्पत्ति देना चाहते थे। यह आचार्यजी युवावस्था में ही विधुर हो गये थे और पुनर्विवाह इस लिए नहीं किया कि तीन बेटें हैं, उन्हें विवाह की क्या आवश्यकता है? ऐसी घटनायें आम हो गई हैं। देहरादून में ही घटी एक अन्य घटना स्थिति की विकरालता प्रदर्शित करती है। एक पुत्र ने अपनी पत्नी के सहयोग से अपने पिता की इस लिए हत्या कर दी कि पिता ने उसके नाम सम्पत्ति करने से मना कर दिया था। एक दूसरे प्रकरण में पिता ने पुत्र को शराब पीकर रात देर से घर आने पर समझाया या नाराज हुए। इससे खिन्न पुत्र ने पिता की हत्या कर दी। हरयाणा के एक मंत्री रहे व्यक्ति का उदाहरण जिसमें एक पुत्री ने पति के साथ मिलकर सम्पत्ति के लिए न केवल पिता की ही हत्या नहीं की अपितु कानूनी रूप से वारिस अपने भाई व उसके परिवार जिसमें पत्नी व छोटे-छोटे बचे भी शामिल थे, सभी की हत्या कर दी थी। **इससे आज मध्यम वर्ग के युवाओं की मानसिकता का पता चलता है कि वह किस प्रकार की हो रही है। यह स्थिति बहुत ही दुखद एवं चिन्ताजनक है।** हमने एक बार सुधांशु महाराज के प्रवचन में सुना था कि एक पिता अपने तीन-चार पुत्रों के व्यवहार से इतना दुखी हो गए कि सबक सिखाने के लिए उन्होंने सभी पुत्रों को परिवार सहित कुछ दिन घूमने के लिए अपने खर्चे पर किसी हिल स्टेशन पर भेज दिया और उनके जाने के बाद एक प्रापर्टी डीलर को बुला कर औने-पौने दामों में अपना बड़ा मकान बेच दिया जिसमें सभी साथ-साथ रहा करते थे। जब बच्चे हिल स्टेशन से लौटे तो चौकीदार ने उन्हें घर के बेचे जाने की सूचना दी और पिता द्वारा कुछ दिन के लिए बुक कराये गये एक होटल की बुकिग व भुगतान की रसीदें आदि पकड़ा दी। उस पिता ने इसके बाद अपना शेष जीवन अपने पैसों से सुख पूर्वक बिताने का प्रयास किया और बच्चों को यथायोग्य सीख भी दी।

बुजुर्ग व्यक्ति यदि परिवार के साथ रहेगा तो जैनरेशन गैप जैसी समस्या के कारण उनमें सुख-शान्ति न रहने की सम्भावना रहती है। संसार की सबसे पुरानी संस्कृति व सभ्यता वैदिक सभ्यता है। यह सृष्टि के आरम्भ से ही अस्तित्व में आ गई थी। यह धर्म, संस्कृति व सभ्यता ईश्वर की देन होने के साथ इसका पल्लवन व परिवर्धन वेदानुसार ऋषि-मुनियों ने किया। उन्होंने मानव जीवन की समस्याओं को समझा था और उसके समाधान भी

खोजे थे। उनका मत था कि ईश्वर का साक्षात्कार मनुष्य जीवन का प्रमुख लक्ष्य है। जब तक यह प्राप्त नहीं होता मनुष्य जन्म-जन्मान्तर में योनि-परिवर्तनों से गुजरता हुआ सुख व दुख प्राप्त करता रहता है। ऋषियों ने चार आश्रम, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास बनाये थें इन चारों आश्रम के लिए 25-25 वर्ष की अवधि निर्धारित की गई है। 25 वर्ष तक गृहस्थ जीवन व्यतीत कर, पुत्रियों के विवाह तथा पुत्र की सन्तान हो जाने पर वन में या घर से पृथक रहने का प्रावधान वानप्रस्थ आश्रम के रूप में किया था। यहां अन्य समान आयु के लोगों के साथ रहते हुए ईश्वर प्राप्ति के लिए स्वाध्याय, तप, सेवा व योग साधना की जाती थी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हरिद्वार के निकट ज्वालापुर स्थान में आर्य समाज द्वारा स्थापित व संचालित एक पुराना **"आर्य वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम"** है जहां एक व दो कमरों के सैट बने हुए हैं। बुजुर्ग व आयुवृद्ध दम्पति यहां सुखपूर्व रहते हैं। जो भोजन बना सकते हैं उन्हें छूट है अथवा अल्प मूल्य पर भोजन आदि की सुविधा उपलब्ध हैं। यहां की दिनचर्या भी जीवन के उद्देश्य को पूरा करने में सहायक है। सभी बजुर्ग यहां एक दूसरे का सुख-दुख बांटते हैं। इस आश्रम में रहने वाले बुजुर्ग अपने परिवारजनों के आदरणीय बन कर रहते हैं। यदि परिवार वाले न भी पूछें तो भी चिन्ता की बात नहीं हैं क्योंकि यहां बुजुर्गों का समय सुख-शान्ति पूर्वक व्यतीत होता है। हमें लगता है कि ऐसी संस्थाओं का विस्तार होना चाहिये। सरकार को भी ऐसे आश्रम बनाकर चलाने चाहिये जिससे परिवार से दुखी व त्रस्त लोग ऐसे आश्रमों में आ कर रह सकें। वैदिक धर्म व संस्कृति में 75 वर्ष की अवस्था में संन्यास लेने का विधान है। संन्यास का अर्थ है कि परिवार से सभी प्रकार के सम्बन्ध हटा कर साधारण जनों में वैदिक धर्म का प्रचार व प्रसार करना जिससे समाज में समरसता बनी रहे। ऐसा व्यक्ति सभी का पूजनीय होता है। वह जहां भी जाता है उसे भोजन, विश्राम व आश्रय प्रदान करने के साथ गृहस्थी जन उन्हें सभी प्रकार की सुविधायें प्रदान करते हैं। वह उन्हें उपदेश देता है और आशीर्वाद देकर मात्र कुछ घंटे या एक रात्रि ही किसी परिवार में ठहरता है। हमारे देश में प्राचीन व सनातन विधानों के अनुसार अतिथि यज्ञ ज्ञानी व विद्वान सन्यासियों की सेवा-सत्कार को ही कहा जाता था जो सभी गृहस्थ प्रसन्नतापूर्वक करते थे। इससे बुजुर्गों को सम्मान व जीवन जीने की सभी सुविधायें समाज से प्राप्त हुआ करती थी।

हम आज की आधुनिक जीवन शैली में जीवन जीने वाले युवा पीढ़ी के लोगों से कहना चाहते हैं कि वह अपने माता-पिता को बोझ न समझ कर उनके स्नेह, वात्सल्य व उनके पालन पोषण में उठाये गये कष्टों का यदा-कदा चिन्तन कर लिया करें। पत्नी की वही बात स्वीकार करनी चाहिये जो उचित व न्यायपूर्ण हो। माता-पिता के मामलें में उनसे पृथकता की कोई भी बात नहीं माननी चाहिये। यदि किसी कारण परिस्थितियां अनुकूल न हो तो माता-पिता को समझाकर किसी अच्छे वृद्धाश्रम में भेज देना चाहिये और नियमित रूप से उनसे मिलते रहना चाहिये। माता-पिता का सभी प्रकार का आर्थिक भार उन्हें स्वयं वहन करना चाहिये। ऐसा नहीं करेंगे तो सामाजिक दृष्टि से अपमानित होंगे और ईश्वर की न्याय व्यवस्था से भी दण्ड पायेंगे। किसी शास्त्र का वचन है कि **"अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"** अर्थात् किये हुए कर्मों के फल अवश्य ही भोगने पड़ेंगे। इससे कोई बच नहीं सकता। जब भी कभी विपरीत परिस्थितयां आयें तो भगवान राम को याद कर उनके अनुसार अपना कर्तव्य निर्धारित करना चाहिये। वैदिक संस्कृति व जीवन शैली में पितृ-यज्ञ भी नित्य प्रति करने का विधान है जिसका अर्थ है कि घर के वृद्ध माता-पिता आदि सभी बुजुर्गों की सेवा सत्कार सन्तानों व परिवार के अन्य सदस्यों को पूरे मनोयोग से करनी चाहिये। ऐसा न करने पर वह भावी समय में ईश्वर के द्वारा दण्ड के भागी होते हैं। यह याद रखें कि आज के युवा कल के बुजुर्ग हैं, ऐसा समय उनके अपने जीवन में भी आ सकता है।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७ अगस्त २०१४
Post in Delhi R.M.S
०१-०७/८/२०१४

अगस्त 2014

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2012-14
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१२-१४
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2012-14

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।

२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।

३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।

४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।

५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा
के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की
अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6

Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.....
ग्राम.....
डा० .....
जिला.....

प्रकाशक : धर्मपाल आर्य, ४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-६
मुद्रक : तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीताराम, दिल्ली-६